आद्य वक्तव्य

स्व. चा. च. श्री १०८ आचार्य शांतिसागर महाराजकी आदर्श दिव्यवाणीको संग्रहकर एक जगह प्रकाशित करनेकी मेरी भावनाको मैंने श्रीमान मा. पं. मक्खनलालजी शास्त्री मोरेनाको पत्र द्वारा प्रगट की। उक्त कार्यकी महत्वताको दर्शाते हुवे उन्होने मेरा उत्साह बढाया। भूमिकाके साथ मैंनें उसका तथा अन्य महत्वपूर्ण लेखों आदिका संग्रहकर उसे साहित्यभूषण चि. तेजपाल काला संपादक जैनदर्शनको नांदगांवमे सौ. अलकाके शुभ विवाहके अवसरपर बताया। उसने ध्यानपूर्वक उसे पढकर छपानेके लिए अपनी सम्मति प्रगट की तथा उसकी एक हजार प्रतिके छपाईका खर्च मेरे पुत्र चि. निर्मलकुमारने अपनी ओरसे देना स्वीकार किया किंतु बंबई आनेपर उसकी पांच हजार प्रति छपानेके लिये स्व. आचार्यश्रीके भक्तोंने जोर दिया तथा उसे श्रीमान पं. मक्खनलालजी शास्त्रीके निगरानीमे मोरेना छपानेके लिये भेजनेको कहा तदनुसार मोरेना उनके पास मैंने भेज दिया। श्रीमान् अनेक पदविभूषित पं. मक्खनलालजी शास्त्री समाज–मान्य, कट्टर आगम मार्गपोषक, सर्वोपरि एक आदर्श विद्वत्‌रत्न महानुभव है। श्री गोपाल दि. जैन सिध्दांत महाविद्यालय मोरेनाका मंत्री होनेके कारण करीब ४० वर्षतक मेरा उनके साथ संपर्क रहा। निःस्वार्थ भावसे सेवा कर उन्होने अनेक शास्त्री विद्वानोंका निर्माण किया। पुरुषार्थ सिद्धि उपाय, राजवार्तिक, पंचाध्यायी आदि अनेक महनीय ग्रंथोंकी टीका की, धर्मरक्षार्थ समय २ पर अनेक ट्रॅक्टोंको लिखकर सन्मार्ग

प्रदर्शन किया। उनके इस महद् उपकारको किसीभी तरह भुलाये नही जा सकता। स्व. आचार्यश्रीकी अमृतमय आदर्श दिव्यवाणी जो कि भव्यात्माओंके लिये उनका मौलिक संबोधन है उसको 'मुक्तिका अमोघ उपाय' शीर्षक इस ग्रंथमें स्वभाव विभाव सहित लोक तथा सप्त तत्वोंका स्वरूप, उत्थान पतनके कारण पूर्वभव, आत्मधर्म, छहढालाका गद्यरूप संक्षेपमें वर्णन आत्मचिंतन, बारह भावना, अंतिम कामना, मनन करने योग्य अनेक पदों आदिका संग्रह किया गया है जो कि सही मोक्ष प्राप्तिके अमोघ उपाय है। समस्त सिद्ध तथा अतिशय क्षेत्र विद्वत्‌गण, जिनमंदिर तथा जैन पत्रोंके सभी ग्राहकोंको विनामूल्य उसका वितरण किया जायगा।

उक्त ग्रंथके प्रकाशन तथा प्रूफ संशोधन आदि कार्यमें श्रीमान विद्यावाचस्पति पं. वर्धमानजी शास्त्री सोलापुरने जो श्रम किया है उसके लिये मैं उनका तथा आचार्यश्री के भक्त उदारदानी महानुभावोंका हृदयसे आभार मानता हुवा उनको कोटिशः धन्यवाद देता हूं।

समस्त स्थानोंकी दि. जैन समाजसे मेरा नम्र निवेदन है कि वे इस उपयोगी ग्रंथका प्रतिदिन पठन, पाठन, मनन तथा स्वाध्यायद्वारा स्व. आचार्यश्रीकी स्मृतिको अपने हृदयमें चिरस्थायी बनाकर सम्यक्त्व तथा संयमकी ओर अग्रगामी होवे।

विनीत

तनसुखलाल काला, बम्बई

स्व. चा. च. पू. श्री १०८ शांतिसागरजी महाराज

हमारा अभिमत

देश भक्त गुरुजीके प्रमुख व्याख्यान आगमके दृढ अनुयायी अतीव सरल एवं सज्जन समाज सम्मान्य सदोग प्रतिभाशाली विद्वान श्रीमान पं. तनसुखलालजी काला महोदयसे समाज सुपरिचित है। हमारे समान उन्होंने धर्म सत्यतत्त्वकी शिक्षा नहीं रखी है, समय २ पर उनके विद्वत्तापूर्ण लेख निकलते रहते हैं। उनके लेखोंका प्रभाव समाजको आकर्षित करता है। कोल्हापुर, फलटणपुर, बारामती, गजपंथ आदि क्षेत्रोंमें हमारा उनके साथ बहुत समयतक समागम रहा है। परमपूज्य आचार्यकुलभूषण शांतिसागरजी महाराजके सान्निध्यमें रहकर उन्हें आहार देनेका सौभाग्य भी हम दोनोंको अनेक बार हुआ है।

श्री गो. दि. जैन सिद्धांत महाविद्यालय मोरेनाके श्री कालाजी करीब चालीस वर्षतक मंत्री रहे हैं। हमारी और उनकी निस्पृह एवं निरीह सेवाकाही यह परिणाम है कि मोरेना महाविद्यालय धार्मिक शैक्षणिक क्षेत्रमें सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। हमारे और मंत्री महोदय कालाजीके बीच कभी कोई मतभेद या कोई दुसरी अड़चन कभी नहीं आई। उनकी सुविचारपूर्ण सम्मति हम मानते रहे और हमारी सम्मति वे मानते रहे। संस्थाकी समुन्नति एवं आर्थिक सहायताके लिये उनका सदैव पूर्ण सहयोग मिलता रहा है। बम्बईमें धार्मिक कार्योंमें उनका पूरा सहयोग रहता है।

श्री पं. तनसुखलालजी कालाका घराना बहुत धा[illegible]
है। उनके भाई श्री माणिकचंदजी तथा सुपुत्र आदि
परायण हैं। बंबईमे उनका उत्तम व्यवसाय हैं। इस [illegible]
कालाजीका समय केवल धर्म साधनामे ही व्यतीत होता [illegible]
बहुत भद्र परिणामी महानुभव है।

मुक्तिका अमोघ उपाय

अभी उन्होने 'मुक्तिका अमोघ उपाय' यह पु[illegible]
लिखी है। इस पुस्तकको छपनेसे पहले हमारे पास भेजी [illegible]
हमने इसे आद्योपांत पढा है। पुस्तक विद्वत्तापूर्ण तो है [illegible]
साथही बहुतही सरल भाषामें उन्होने अपने अनुभव[illegible]
सुविचार एवं चिंतन इस पुस्तकमें लिखें है जिन्हें पढकर भ[illegible]
मानवका हृदय बदलकर धर्म साधनमें लग सकता हैं [illegible]
आत्मचिंतनकी ओर झुक सकता हैं। लेखक विद्वान काला[illegible]
ने राष्ट्र एवं राज्य शासनकें लिए भी संबोधन इस पुस्तक[illegible]
किया है। और बताया है कि हिंसा अनीति एवं पाप [illegible]
को छुडानेसे ही राज्य शासन सुचारु रुपसें चल सकता [illegible]
उसीसे राष्ट्रका हित है। आज भारतमें हिंसाकी प्रवृ[illegible]
बहुत बढ रही हैं, मांस मदिराका सेवन भी बहुत बढ [illegible]
है, दीन पशु पक्षी हजारोंकी संख्यामें प्रति दिन मारे जा [illegible]
है उसका ही यह परिणाम हैं कि समुद्री तुफान, वायुया[illegible]
आदिसे लाखों मनुष्योंकी मृत्यु हो रही हैं। इस पुस्तकमें
कुछ ऐसें नियमभीं लिखे हैं जिसका छोडना श्रावकके लिए
जरुरीं है और कुछ ऐसेंभी नियम लिखे है जिसका पालन
करना भी अत्यावश्यक है।

ढाला

छहढाला शास्त्रकी प्रत्येक ढालका संक्षिप्त वर्णनभी एक विद्वानने लिखा है जो अत्यंत उपयोगी है। हमारा अभिमत है कि यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थको मननपूर्वक पढना चाहिए। सभीके लिये पुस्तक मार्गदर्शन है। हर नगरके दिरमें पुस्तकका स्वाध्याय होना चाहिए। इस सुविचारपूर्ण लेखनके लिये हम पं. तनसुखलालजी काला महोदयको ि. २ धन्यवाद देते हैं। समाजभी उनका उपकृत रहेगा।

— मक्खनलाल शास्त्री 'तिलक'

अभिमत नहीं कृतज्ञता !

जिनकी सुखद संस्कृति संपन्न छत्रछायामें रहकर मैंने अपने जीवनके प्रारंभमें लगभग पच्चीस वर्षतक शालीक्षा प्राप्त की, सुसंस्कारोंकी निर्मल सरितामें अवगाहन किया, धर्मशिक्षाके पाठ पढे, पूज्य महान दिगम्बराचार्य और तपस्वी साधुओंका शुभाशिर्वाद मिला, सिद्धांतमर्मज्ञ दिग्गज विद्वानोंकी सत्संगति मिली। सतत आत्मविकासको प्रेरणा मिली और समाजसेवा करनेकी स्फूर्ति प्राप्त हुई। उन श्रध्येय वयोवृध्द समाज प्रसिध्द विद्वान भाईसाहब प्र. पं. तनसुखलालजी काला बम्बई निवासीकी सुविध अनुभवपूर्ण लेखनीसे अनुस्यूत 'मुक्तिका अमोघ उपाय' जैसी इस एक अत्यंत सामायिक समाजोपयोगी कृतिका मैं क्या अभिमत दूं ?

[illegible]
[illegible]
तथा प्रभावशाली बना रही है । सामाजिक पत्रोंमें समय स
पर लिखे गये आपके सामयिक लेखोंसे समाजमें जा
जागृति हुई और समाजको वास्तविक मार्गदर्शन मिला है
आपकेही लेखोंसे मुझेभी सामाजिक पत्रोंमें लिखनेकी रुचि
हुई और उन्हीका यह शुभाशीर्वाद है कि आज गत चार
वर्षोंसे समाजमें ख्यातिप्राप्त जैनदर्शन (साप्ताहिक) पत्र
संपादनके रूपमें समाजसेवा करनेका सुयोग मैं प्राप्त क
सका हूं । अतः जिनसे मैंने गुरुकुल शिक्षा प्राप्त की उ
महान उपकारीकी गुरुभक्तीसे लिखी कृतिपर मैं अपना अभि
प्रगट करनेमे अपनेको अयोग्य पाता हूं । यह छोटे मुंह ब
बात होगी । तथापि इस बहुमूल्य कृतिपर कृतज्ञताके रू
दो शब्द कहनेका लोभ संवरण नही किया सकता हूँ ।

संसाररूपी महान दुःखकीर्ण अटवीमें भटकते प्राणियों
मोक्षही एक ऐसा स्थान है जहां निराकुल शास्वतिक स
सुखकी प्राप्ति हो सकती है । किंतु मोक्षका सही रास
(उपाय) न जाननेके कारण संसारके प्राणी सभी दुःखी
सर्वज्ञ प्रणीत आगममें वह मार्ग उपलब्ध है । उसी मार्ग
ज्ञान स्व. परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती १०८ श्री आच
शांतिसागरजी महाराजने जो वर्तमान युगके एक मह
रत्नत्रय संपन्न तपस्वी श्रमणश्रेष्ठ दि. जैनाचार्य हुवे है, स
समयपर अपने उपदेशोंद्वारा करा दिया था । उन विद्वत्ता
सुबोध उपदेशोंमे जिनवाणीका सार समाहित है । व्यक्ति
और समाजहितका वास्तविक उपाय दर्शाया गया है । कि

उन उपयोगी उपदेशोंको एकही स्थानमें समग्र रूपमें जाननेका कोई साहित्य अबतक उपलब्ध नहीं था। विद्वद्वर्य श्रद्धेय भाईसाहब पं. इन्द्रलालजी शास्त्री जो आचार्यश्रीके निकट-तम गृहस्थ शिष्य रहे हैं, उन्होंने पूज्य आचार्यश्रीके उन आदेशों उपदेशों और विचारोंका एक जगह संकलनकर जो 'मुक्तिका अमोघ उपाय' नामक अत्यंत उपयोगी पुस्तक लिखी है वह वास्तवमें व्यक्ति और समाज हितकी दृष्टिसे एक बहुमूल्य कृति मानी जायगी। यह एक ऐसा सुंदर संकलन है जो मोक्ष प्राप्तिकी दिशामें मानवको सदैव सत्प्रेरणा देता रहेगा। यह कृति एक ऐसे दीपस्तंभका काम करेगा जो युग युगतक संसारके संतप्त प्राणीओंको और मोक्षाभिलाषी मानवोंको सर्वदा शर्मद, सुखद, मुक्तिपद, सद्बोधरूप प्रकाश देता रहेगा। निश्चयही इस महत्वपूर्ण कृतिने समयकी एक अत्यंत आवश्यक पूर्ति की है।

आचार्यश्रीकी वाणी तो मुक्तिके अमोघ उपाय रूपमें सदैव आत्महितैषी मानवोंका मार्गदर्शन करेगाही किंतु उसके साथही जो इस पुस्तकमें अन्य आवश्यक प्रकीर्णक दिये गये हैं वास्तवमें वे भी बहुत उपयोगी और आत्मकल्याणकारी हैं। सम्माननीय विद्वान लेखक भाईसाहबका यह प्रयास अत्यंत स्तुत्य, श्लाघनीय एवं बोधप्रद है। आशा है आत्म हितैषी मानव इस उपयोगी साहित्यसे सदैव लाभ लेता रहेगा।

—कृतज्ञ

तेजपाल काला, संपादक जैनदर्शन

(समाजरत्न, विद्वद्रत्न, साहित्यभूषण, काव्यमनीषी)

पूज्य आ[illegible] महाराजने एक आदेशमें आशीर्वाद [illegible]
चारित्र[illegible] [illegible], एक [illegible] अपनी [illegible]
तथा [illegible] महाराजकी है। सामाजिक प्रश्नोंपर [illegible]
पर लिखे गये आपके प्रकाशित लेखोंसे समाजमें काफी
जागृति हुई और समाजको मार्गदर्शन मिला है।
आपकेही लेखोंसे मुझेभी सामाजिक प्रश्नोंपर लिखनेकी स्फूर्ति
हुई और उन्हींका यह शुभाशीर्वाद है कि आज [illegible]
वर्षोंसे समाजमें ख्याति प्राप्त जैनदर्शन (साप्ताहिक) पत्रके
संपादनके रूपमें समाजसेवा करनेका सुयोग मैं प्राप्त कर
सका हूं। अतः जिनसे मैंने सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त की उन
महान उपकारीकी [illegible] लिखी [illegible] मैं अपना अभिमत
प्रगट करनेमें अपनेको अयोग्य पाता हूं। यह छोटे मुंह बडी
बात होगी। तथापि इस बहुमूल्य [illegible] के बारेमें
दो शब्द कहनेका लोभ संवरण नहीं किया सकता हूं।

संसाररूपी महान दुःखकीर्ण अटवीमें भटकते प्राणियोंको मोक्षही एक ऐसा स्थान है जहां निराकुल शाश्वतिक सच्चे सुखकी प्राप्ति हो सकती है। किंतु मोक्षका सही रास्ता (उपाय) न जाननेके कारण संसारके प्राणी सभी दुःखी है। सर्वज्ञ प्रणीत आगममें वह मार्ग उपलब्ध है। उसी मार्गका ज्ञान स्व. परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती १०८ श्री आचार्य शांतिसागरजी महाराजने जो वर्तमान युगके एक महान् रत्नत्रय संपन्न तपस्वी श्रमणश्रेष्ठ दि. जैनाचार्य हुवे है, समय समयपर अपने उपदेशोंद्वारा कराया था। उन विद्वत्तापूर्ण सुबोध उपदेशोंमे जिनवाणीका सार समाहित है। व्यक्ति और समाजहितका वास्तविक उपाय दर्शाया गया है। किंतु

इन उपयोगी उपदेशोंकी एकही स्थानमें समग्र रूपसे जाननेका कोई साहित्य अवतक उपलब्ध नही था। विद्वद्वय श्रद्धेय भाईसाहेब पं. तनसुखलालजी काला जो आचार्यश्रीके निकटतम गृहस्थ शिष्य रहे है, उन्होने पूज्य आचार्यश्रीकें उन आदेशों उपदेशों और विचारोंका एक जगह संकलनकर जो 'मुक्तिका अमोघ उपाय' नामक अत्यंत उपयोगी पुस्तक लिखी है वह वास्तवमें व्यक्ति और समाज हितकी दृष्टिमें एक वहुमूल्य कृति मानी जायगी। यह एक ऐसा सुंदर संकलन है जो मोक्ष प्राप्तिकी दिशामें मानवको सदैव सत्प्रेरणा देता रहेगा। यह कृति एक ऐसे दीपस्तंभका काम करेगा जो युग युगतक संसारके संतप्त प्राणीओंको और मोक्षाभिलाषी मानवोंको सर्वदा शर्मद, सुखद, मुक्तिपद, सद्वोधरूप प्रकाश देता रहेगा। निश्चयही इस महत्त्वपूर्ण कृतिने समयकी एक अत्यंत आवश्यक पूर्ति की हैं।

आचार्यश्रीकी वाणी तो मुक्तिके अमोघ उपाय रूपमें सदैव आत्महितैषी मानवोंका मार्गदर्शन करेगाही किंतु उसके सायही जो इस पुस्तकमें अन्य आवश्यक प्रकीर्णक दिये गये हैं वास्तवमें वे भी वहुत उपयोगी और आत्मकल्याणकारी हैं। सम्माननीय विद्वान लेखक भाईसाहवका यह प्रयास अत्यंत स्तुत्य, श्लाघनीय एवं वोधप्रद हे। आशा है आत्म हितैषी मानव इस उपयोगी साहित्यसे सदैव लाभ लेता रहेगा।

—कृतज्ञ

तेजपाल काला, संपादक जैनदर्शन

(समाजरत्न, विद्वद्‌रत्न, साहित्यभूषण, काव्यमनीषी)

परिवार परिचय तथा कार्य

मेरे पिता स्व. पू. चंद्रभानजी कालाका विवाह स्व. नानूरामजी पाटनी डेह (मारवाड) निवासीकी पुत्री श्री भूंगारबाईसे हुवा। मुझे तथा चि. माणिकचंदको उनकी कूखसे जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुवा। पिताजीको आजीवन जैनके हाथकेही पानी पीनेका नियम था। उसको माताजीने अंततक निभाया। पिताजी अणुव्रत धारीथे सं. १९८५ में श्री सम्मेदशिखरजी आदि तीर्थोंकी यात्रा करते हुवे कानपुरमें उनका देहान्त हो गया। माताजी तथा मेरी धर्मपत्नीकी मृत्यु सं. २०११ जालनामें हो गई। मैंने, माताजी तथा मेरी धर्मपत्नीने स्व. परमपूज्य श्री १०८ चंद्रसागर महाराजसे कोपरगांवमें दुसरी प्रतिमा ग्रहण कर ली थी। चारित्रमें मेरी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। मैंने पांचवी प्रतिमा स्व. परमपूज्य आचार्य श्री १०८ शिवसागर महाराजसे लाडनू (मारवाड) में ग्रहण कर ली तथा सप्तम प्रतिमा चाकसू पंचकल्याणक प्रतिष्ठामें उनसे ग्रहण की। कलकत्तामें ३० उपवास तीन बेलेके, रत्नत्रयके तीन उपवास, दशलक्षणके ५ उपवास, रविवार तथा अनंतव्रतके संयम किये। मेरे ज्येष्ठ पुत्र नरकुमारने श्री सम्मेदशिखरजीपर परमपूज्य आचार्य श्री १०८ शिवसागर महाराजसे अणुव्रत ग्रहण किये और उनके दूसरेही दिन कलकत्तामें पू. श्री १०५ आर्यिका इंदुमतीजीके संघके समक्ष उसकी मृत्यु हो गई। दूसरेही मेरी प्रवृत्ति

सिन रूपसे थी । दुर्भाग्यसे करीव ४२ वर्ष हुवे मुझे
याकी शिकायत होनेसें मैं चारित्रमें आगे नही वढ सका ।
रेशन करानेका डॉ. ने मुझे कहा किंतु मेरी इच्छा आप–
। करानेकी नही हुई । मेरा प्रातः ४ वजेसे ९ वजेतकका
। सामायिक, स्तोत्र, पाठ पूजन तथा स्वाध्यायमें व्यतीत
। हैं । मेरे द्वितीय पुत्र अभयकुमारने धार्मिक शिक्षा प्राप्त
व्यापारमें लग गया । उसका एक पुत्र पवनकुमार वी. ई.
: पास है । दुसरा विजयकुमार तथा शैलेन्द्रभी उसकी
में रहते है । मेरा दूसरा पुत्र निर्मलकुमार रायपुरमे
होकेट है । भाई माणिकचंद कविता आदि करनेमें
ल है । उसकी रचना आकर्षक होती है । उसका जवेर-
मोतीलालके नामसे कपडेका कमिशन एजंटका काम
इमे है । उसके दोनों पुत्र आनंदकुमार तथा प्रकाशचंद
नका काम संभालते हैं । उसने अपनी धर्मपत्नी सौ.
ानदेवीके आग्रहसे श्री वाहुवली स्वामीकी ५ फूटकी
मा पोदनपुरमे प्रतिष्ठा कराके खंडवा अपने ससुरालके
ालयमें विराजमान की है । हम सबके घरोमे चैत्यालय
से सब परिवारको अच्छा धर्मलाभ होता है । मुनियोको
ारदान देकर लाभ उठाते है ।

चि. तेजपाल (मेरा चचेरा भाई) साहित्यभूषण जैन
। पत्रका संपादक है । उसकी लेखनशैली तथा कार्य–
लीसे सारा समाज प्रभावित है । उसकी धर्मपत्नी सौ.
कीदेवी तथा उसने दशलक्षणके १० उपवास किये थे तथा
ने स्व. परमपूज्य श्री १०८ सुपार्श्वसागर महाराजके

स्व. चा. च. आचार्य श्री शांतिसागर महाराज
गुरुकुलाश्रम पोदनपुर (बम्बई) के
मूल संस्थापक
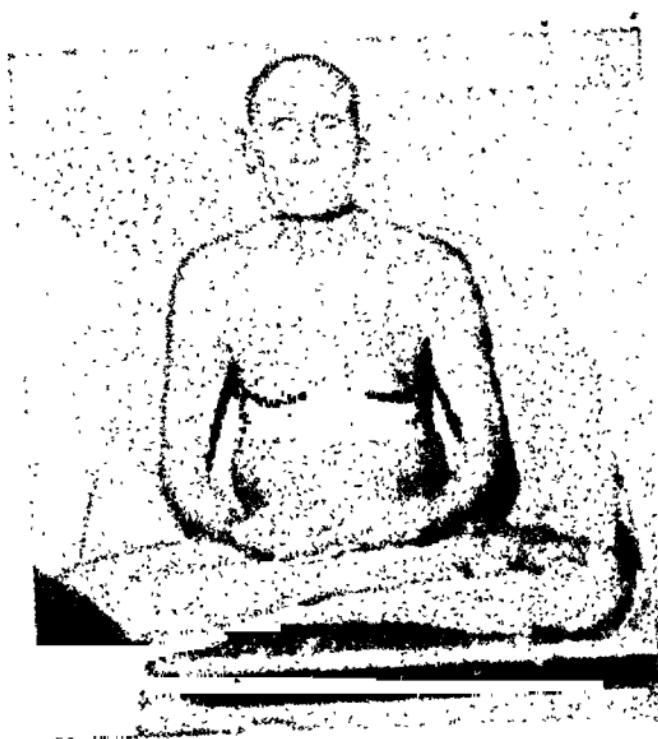
स्व. पूज्य श्री १०८ नेमिसागरजी महाराज

गुरुजनोंका आशीर्वाद

' मुक्तिका अमोघ उपाय ' शीर्षक आपकी प्रकाशनाधीन
स्तकके वारेमें जानकारी प्राप्त हुई। जिन पुस्तकोसे समा–
का ज्ञान वढे, श्रध्दान वढे एवं चारित्र वढे वो पुस्तकेही
मुमुक्षुओंके लिये उपयोगी एवं उपादेय है। हमारा इसके
लये आपको शुभाशिर्वाद है।

—आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज

आप भव्य जीवोंके कल्याणार्थ ' मुक्तिका अमोघ उपाय '
पुस्तक निकलंवा रहे है वह जन २ का कल्याण करेगी। विषय
भी आगमपूर्वक श्रेयोमार्गी है। स्व. आचार्यश्रीकी दिव्यवाणी
धर्मोपयोगी होनेसे सम्यक्दर्शनको उत्पन्न करानेवाली होगी।
आपका प्रयास पूर्ण सफल हो यही हमारी कामना तथा
शुभाशिर्वाद है।

—आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज

' मुक्तिका अमोघ उपाय ' शीर्षक पुस्तक वालक युवा
तथा वृध्द सवके लिये अतीव उपयोगी चीज हैं। स्व. प. पू.
चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागर महाराजकी
दिव्य देशनाका तथा अन्य उपयोगी प्रकीर्णकोंका इसमें संग्रह
किया गया है। इसका प्रतिदिन स्वाध्याय करनेसे प्राणी संयम
की ओर प्रवृत्ति कर अविनश्वर सुखका भागी वन सकता है।
इसकें लिये पं. तनसुखलाल कालाको हमारा शुभाशिर्वाद है।

—आचार्य श्री सुवाहुसागरजी महाराज

स्व. चा. च. श्री १०८ आचार्य
शांतिसागरजी महाराजकी
दिव्य देशनाका मननकर
अहिंसा, सत्य तथा रत्नत्रय
(सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र)
स्वरूप मार्गका अवलंबन कीजिये

ॐ

श्री शांतिनाथाय नमः

मुक्तिका अमोघ उपाय

(परमगुरु आचार्य महाराजको संबोधन)

मन्गल स्तवन

श्री शांतिनाथ जिनेन्द्र की पादार विन्द सुवंदना ।
हरती सदा जग-जीवन जनकी आर्त दुखमय क्रन्दना ॥
मैं भी सदा प्रणमू त्रिविधसे धार उत्तम भावना ।
जन्म मृत्यु जरादि रुजके मेटनेकी कामना ॥
अज्ञान तमसे हृदय लोचन अंध जिनके हो रहे ।
ज्ञान-अंजन की शलाकासे लगा उसको खो रहे ॥
निस्पृह दिगम्बर वीतरागी शांतिसागर गुरुचरण ।
मैं नमूं त्रिविध सु भक्ति सें सब जगतके तारण तरण ॥
सर्व-विध हिंसा निषेधक जो निवृत्ति स्वरूप है ।
अनुयोग चारोंमें विभाजित अनेकान्त प्ररूप है ॥
चाहे कहीं भी देखलो अविरुध्द जिनमें है वचन ।
नय प्रमाण सुयुक्ति पूरित शास्त्रको मेरा नमन ॥
यह आत्मधर्म पवित्र-पावन सर्व जगमें सार है ।
इसके शरणसे शीघ्र होता सौख्य लाभ अपार है ॥
भवभ्रान्त जीवोंको यही है मार्गका दर्शक परम ।
मुक्ति तक प्रति भव मिले यह नमन इसको है चरम ॥

— विषयानुक्रमणिका —

शुद्धि-पत्रक

पेज	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
७	२	विद्वद्वग	विद्वद्वर्य
७	१६	करेगाही	करेंगीही
८	६	घरीये	धारीवे
८	१८	३०	१०
१२	४	सोनगिर	सोनागिर
१२	६	कचनेन	कचनेर
१२	१८	१०८	आचार्यश्री १०८
५	१०	प्रतिक	प्रतिक
५	२०	समत्वका	सम्यत्वका
७	१८	मृताधि	मृगादि
८	२१	पद्मशांत	परमशांत
९	१३	अलिप्त	अनित्य
११	९	हरावो	हटावो
१२	२	घर	छूट
१३	२०	चर	नर
१४	२४	सत्सादन	सासादन
१५	६	सत्सादन	सासादन
२१	४	अमृतकुन्ड	अमृतकुंभ
२१	१९	जराकुमार	जरत्कुमार
२३	१७	हरे	हटे
२३	१९	अंतर्जल्य	अंतर्जल्प
२३	२०	इंद्रियाजनित	इंद्रियजनित
२४	१४	हरा	हटा

पेज	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
७७	१८	स्यावी	स्वामी
७७	१८	मैं	वे
७८	५	मध्यह	मध्यहापह
७८	१८	दिये	दिपे
७९	६	अघिर	अथिर
७९	७	मान	मानूं
८०	६	वनत	वतन
८०	१६	कच	कव
८१	२	मित	चित
८१	२	हरत	टरत
८१	३	नारी	न्यारी
८१	३	तव	तवनित
८१	१२	सदो	तेरो
८१	१५	वेळ	वेल
८५	१२	सहने	सहते
८६	७	माझो	मासो
९७	१	ब्यांड	ब्याळं
९७	४	काटे	काठे
९८	८	कमु	कहे
११३	२	सोनागिर	सोनागि
११३	२१	परिजाति	परिजा
११५	१	लन्वकारको	लन्वका
			दूर करं

-❀❀-

लेखक और संग्राहक

स्व. चा. च.

श्री १०८ आचार्य शांतिसागर महाराज.की आदर्श दिव्य-वाणी

(भव्यात्माओंके लिये उनका मौलिक संबोधन)

भगवान महावीरके निर्वाण होनेके वाद ३ केवली, ५ श्रुतकेवली, ११ मुनि (११ अंगदशपूर्वकेधारी) ५ मुनि (११ अंगकेधारी) ४ मुनि (केवल १ अंगधारी) इस प्रकार पांच प्रकारके मुनि हुये जो कि करीव ६८३ वर्षतक जिन-वाणीके परंपराका रक्षण करते हुवे। उसके पश्चात् श्री कुंद-कुंदाचार्य, आचार्यश्री परम उमास्वामी, श्री समंतभद्राचार्य, आचार्य पूज्यपाद, आचार्य पात्रकेसरी, श्री आचार्य अकलंक-देव, श्री भगवज्जिनसेनाचार्य, आचार्य वीरसेन, प्रभाचंद्र, सोमदेव, आचार्य गुणभद्र आदि अनेक आचार्योंने अनेक ग्रंथ आदिका निर्माण कर जैन धर्मकी महान् प्रभावना की। उनके

ो १०८ आचार्य श्री विमलसागर महाराज, श्री १०८ विद्या-
दजी महाराज, आचार्यकल्प श्री १०८ श्रुतसागरजी महाराज
पाध्याय श्री १०८ सिद्धसेन महाराज, श्री १०८ श्रेयांस
ागर महाराज, श्री १०८ समंतभद्र महाराज, श्री १०८
ार्यनंदि महाराज आदि अनेक वीतराग महर्षि धर्मका महान्
द्योत कर रहे हैं। तथा उनका स्वतंत्र विहार भारतवर्षमें
ो रहा है। अनेक विदुषी अर्जिकाएँ भी अपने स्वपर कल्या-
मेंं संलग्न हैं। मुनियोंके दर्शनोंका भी जहाँ अभावसा हो
या था वहाँ आज सैकडोंकी संख्यामें त्यागीगण दृष्टिगोचर
ो रहे हैं।

यह सब स्व. विश्ववंद्य चा. च. श्री १०८ आचार्य
ांतिसागर महाराजकी आदर्श दिव्य-वाणीकाही प्रभाव है
जो कि समय २ पर उनके जीवनकालमें उनके द्वारा प्रगट
की गई थी। उन्ही आचार्यश्रीकी आदर्श दिव्यवाणीको समा-
जके लाभार्थ संकलनकर उसको हमने इसमें प्रकाशित की है।
उनकी यह आदर्श दिव्यवाणी क्या है? सारे जिनागमके परि-
शीलनद्वारा प्राप्त किया दिव्यबोध है, जिसके कि वाचन तथा
मननसे समस्त संसारी जीवोंका महान कल्याण होता है। ये
यद्यपि आज विद्यमान नही है, उनके स्वर्गवासको करीब
२० वर्ष हो चुके है। किन्तु उनकी अमर देशनामें प्राणियोंके
उत्थानका समुचित मार्ग मौजूद है, जो उनके प्रत्यक्ष संबो-
धनके समान है। उसके प्रतिदिन वाचन तथा मननसे पाठक-
गण यथार्थ मार्गका अनुसरण कर सम्यक्बोधको प्राप्त होंगे

ा मनुष्य आयुका बंध कर लिया है। उसके व्रती बननेके
व नहीं होते है। जो लोग सोचते है कि संयम पालन कर-
में कष्ट होता है, उनके संदेहको दूर करते हुवे पूज्यश्रीने
हा, संसारके कामोंमें जितना श्रम जितना कष्ट उठाया
ाता है उसकी तुलनामें व्रती बननेका कष्ट नगण्य है।
नदेश व्यापार व्यवसाय आदिमें द्रव्यके अर्जन करनेमें कितना
म किया जाता है ? और उसका फल कितना थोडासा
मलता है। इतने दिन सुख भोगते २ संतोष नही हो पाया
ो शेष थोडीसी जिंदगीमें जिसका जरा भी भरोसा नही है
ुम कितना सुख भोगोगे ? कितना संचय करोगे ? प्रतिक
नकर देव पर्यायमें तुम्हे इतना सुख मिलेगा जिसकी
ल्पना भी नहीं कर सकते। देवोंको दशांग कल्पवृक्षोंके द्वारा
मनोवांछित सुखकी सामग्री मनोज्ञतम प्राप्त होती है, वहां
निरंतर सुख रहना है। वहां बालपन, बुढापा नही है। सदा
यौवनका सुख रहता है। वहां पांचवे छट्टे कालका संकट
नही है। वहां खाने-पीनेका कष्ट नही है। अपने समयपर
कंठमें अमृतका आहार हो जाता है। स्वर्गसे तुम विदेहमें
जाकर भगवान सीमंधर स्वामी आदि तीर्थंकरोंके समवसर-
णमें दर्शन कर सकोगे, उनकी दिव्यध्वनि सुनकर उनकी
वीतराग छविका दर्शनकर, समत्वका लाभ कर सकोगे।
नंदीश्वर दीपके बावन जिनालयोंमें जाकर अकृत्रिम जिन-
बिम्बोंके दर्शनकर आनंद ले सकोगे जिनके दर्शनसे मिथ्यात्व
छिन्न भिन्न हो जाता है। वहांसे विदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर
वज्र वृषभ सहननको पाकर तुम मोक्ष पहोंच सकते हो, अत-
एव व्रतिक बनना महत्वका है। इसके सिवाय कल्याणका

ादिका भय नही रहता है । जिनवाणीके मंत्रको पाकर त्तेके जीवने देवपद पाया था। केवली भगवान सूर्यके मान है । उनकी वाणी दीपकके समान है । उनकी वाणीका क्षात् जिनेंद्रके समान आदर करना चाहिये । जिनेंद्रकी ाणीमें अपार शक्ति है। उसमें हमारा विश्वास नही है, स लिये हम असफल होते है । अभी पंचमकालका बाल्यकाल । इसलिये जिन धर्मका लोप नही होनेवाला है। भग-ानकी वाणी औषधीके समान है। और पापोंका त्याग रना उस औषधी ग्रहणके लिये पथ्यके समान है । हिंसा रना महापाप है । धर्मका प्राण तथा जीवन सर्वस्व यह अहिंसा धर्म है। शासनको भी इस अहिंसा धर्मको नही भूलना चाहिये । इसके द्वारा ही सच्चा कल्याण होगा । कोई २ सोचते है कि जिस जैन धर्ममें सांप, विच्छूको मारना निषिद्ध माना गया है, उसके उपदेशके अनुसार राज्यकी व्यवस्था कैसे हो सकेगी ? यह धारणा ठीक नही है । जैन धर्ममें सर्वदा संकल्पी हिंसा न करनेकी आज्ञा है । अर्थात् किसी निरपराधी तृणादि भक्षणका शांतिसे जीवन बिता-नेवाले मृतादि जीवोंको मारना, पक्षियोंको मारना, मछली आदिको मारना यह सब संकल्पी हिंसा है घोर पाप है । गृहस्थ विरोधी हिंसा नही छोड सकता है ।

जैन धर्मके धारक चक्रवर्ती, मंडलेश्वर, महामंड-लेश्वर आदि बडे २ राजा हुये हैं । गृहस्थके घरमें चोर घुस गये है । अथवा आक्रमणकारी आ गये हैं तब वह उन्हें मारेगा । वह निरपराधी जीवकी हिंसा नही करेगा वह

को बिल्कुल भुला दिया जाय। अगर पूर्ण रूपसे उसका
लन नही होता है, तो जितनी शक्ति है उतना पालन
ो। किन्तु जितना पालन करते हो उसे अच्छी तरह
रो। असमर्थ बनकर चुपचाप बैठना ठीक नही है और
स्वच्छंद बननेमे ही भलाई है। शक्तिको न छिपाकर इस
का पालन करना प्रत्येक समझदार व्यक्तिका कर्तव्य
। मुनि धर्मका पालन बच्चोंका खेल नही हैं। मुनिधर्म
यन्त कठिन हैं। प्राणोंकी भी आशा छोडकर मुनिपद
ीकार किया जाता है। जब भी इस धर्मका पालन असं-
व हो जाय, तब समाधिमरण करना आवश्यक कर्तव्य हो
ता है। इस धर्मका मूल आधार संसार तथा भोगोंमें
दासीनता और संपूर्ण आशाओंका परित्याग है। इसके
ये सदा अलिप्त भावना अंतःकरणमें विद्यमान रहना
हिये। जब बडे २ चक्रवर्तीतक इस जगको छोडकर चले
ये तब साधारण मनुष्यकी क्या कीमत है? राज्यसे बढकर
ौर क्या चीज हैं, उसको भी छोडकर महापुरुषोंने मुनि
ीवनको स्वीकार किया है। अब प्रश्न होता है, मुनि बन-
का क्या उद्देश्य है? कर्मोंकी निर्जरा करना मुनि जीव-
का ध्येय है। मुनिपदको धारण किये बिना कर्मोकी
नर्जरा नही होती। गृहस्थ जीवनमें सदा बंधका बोझा
बना ही जाता है। उसके पास कर्म निर्जराके साधन नही
। इसलिये निर्जराके लिये त्यागी बनना आवश्यक हैं।
ो यह सोचते है कि पेट भरनेके लिये मुनिपद धारण
किया जाता है, वे उसके मर्मको नही जानते। वेष धारण
करने मात्रसे कार्योंकी निर्जरा नही होती। परिग्रहका त्याग

गुणस्थानवर्ती जीव नरक गतीमें क्यो नही जाता है ? इसका कारण यह है कि उसके पास कुछ चारित्र है। सम्यक्त्वके होनेपर अनंतानुबंधी नामक चारित्र मोहनीय कर्मके अभावमे स्वरुपाचारण चारित्र होता है। अतः चारित्र सम्यक्त्वका साथी है। सम्यक्त्व नष्टहो गया फिर पूर्व चारित्रका कुछ संस्कार है जो सत्सादन गुणस्थानवर्ती जीवके नरक गतिके बंधको रोकता है। सम्यक्त्वकी प्राप्ति दैवके आधीन है अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्म सत्तर कोटाकोटी सागरकी स्थितिसे घट-कर केवल अंतः कोटि सागर प्रमाण रह जाता हैं। तभी सम्यक्त्व प्राप्तिकी पात्रता आती हैं। सम्यक्त्व प्राप्तिमें दूसरा कारण व्यवहार सम्यक्त्व (देवगुरुओंमें दृढ-श्रद्धा) है। चारित्र पुरुपार्थके आधीन हैं। उपादान सम्यक्त्व हैं और उसका निमित्त कारण व्यवहार चारित्र हैं। निमित्त भी बलवान हैं। भव्य द्रव्यलिंगी मुनि मरकर देव पर्यायमें गया, वहांसे समवसरणमें जाकर वह सम्यक्त्वी बन जाता हैं। द्रव्यलिंगके सिवाय भावलिंग नही होता, यद्यपि भाव-लिंगके विना मोक्ष नही हैं।

जो अन्य जीवोंकी प्राणोंकी रक्षा करता है वह स्वयं विपत्तियोंसे बचता हैं। रामचंद्र तथा पांडवोंने राज्य किया था, उनका चारित्र देखो। जब दुष्ट जन-राज्य पर आक्र-मण करें तो उसे रोकना पडता हैं। दूसरे राज्यके अपह-रणको रोकना चाहिये। निरपराध प्राणीकी रक्षा करना चाहिये। राजाका कर्तव्य हैं कि संकल्पी हिंसा बंद करें। निरपराधी जीवोंकी रक्षाके लिए शिकार न खेलें.

और अज्ञान है। हमारा अपने बच्चोंकी तरह पालन करना सच्ची राजनीति है। हमें हरिजनोंको देखकर बड़ी दया आती है। हमारा उन बेचारोंपर द्वेष भाव भी लेश नहीं है। क्योंकि कारण वे बेचारे अपार कष्ट भोगते हैं। हम उनका तिरस्कार नहीं करते हैं। हमारा तो कहना यह है कि उन दीनोंका आर्थिक कष्ट दूर करो, भूखोंको रोटी दो। तुमने उनके साथ भोजन कर लिया तो इसमें उन बेचारोंका कष्ट कैसे दूर हो गया? भंगी आदि सब हमारे भाई हैं। परस्पर दया करना जैन धर्मका मुख्य सिद्धान्त है। अन्यमती सभी साधु भी हमारे भाई हैं। हम पूर्वमें कई भव नीच पर्यायको धारण कर चुके हैं। हरिजनोंके प्रति हमारा द्वेष भाव नहीं है। तुम कई मंजिलोंवाले भवनोंमें रहो और वे झोपड़ीमें पड़े रहें, वे आवश्यक अन्न वस्त्र भी न पा सकें उनका फिकर न करके तुम उनके साथ खानेको कहते हो, साथमें खानेसे आत्माका उद्धार नहीं होता है। मलिन वस्तुओंसे शरीरमें रोग बढ़ते हैं और आत्मामें शुद्धता नहीं आती है। अपनी शुद्धता रक्खो परन्तु हरिजनोंसे घृणा मत करो। उन बेचारे मलिन पेशा करनेवालोंपर दया भाव रक्खो उनकी सहायता करो। जीवनका उद्धार होता है पापका त्याग करनेसे। उनसे शराब, मांस, मधु सेवनका त्याग कराओ, निरपराधी जीवकी हिंसाका त्याग कराओ। उनकी गरीबीका कष्ट दूर करो। प्रत्येक गरीबको उचित भूमि दो, इसके साथ शर्त हो कि वह मद्य मांस शिकारका त्याग करें तथा निरपराध जीवोंका वध न करें। बेचारे असवर्णों तथा गरीबोंका उद्धार राजसत्ता कर सकती है। वह हमसे पूछे तो हम उनका उद्धारका सम्म-

मार्ग बतावें। जब हम एकेंद्रिय जीवोंका रक्षण करते हैं तब बेचारे पंचेंद्रिय मानव पशुओंके शरीर आदियोंके हितका ध्यान क्यों नहीं आता है। उनका समुचित उद्धार उनको सदाचार पथमें लगानेमें और उनको भूमि देकर आजीविकाकी व्यवस्था करनेमें है। उन्नतिकी बडी २ कोरी योजनाओंमे सुंदर प्रस्तावोंसे किसीका कल्याण नही होता। संसारके जीव अथवा उनके समुदायरूप राष्ट्र तबही सुरक्षित होंगे जब वे हिंसा, झूट, चोरी, परस्त्री लंपटता तथा अधिक तृष्णाका त्याग करेंगे तबही आनंद और शांतिकी प्राप्ति होगी। शास्त्रोंमे स्वयं कल्याण नही है। वे तो कल्याण पथ प्रदर्शक है। देखो! सडकपर कहीं कहीं खंबा गडा रहता है, वह चारों ओर जानेवाले मार्गोंको सूचित करता है कि इस रास्तेसे तुम अमुक प्रदेशको जा सकते हो; वह साईन बोर्ड जबरदस्ती इष्ट स्थानपर नही ले जाता। इसी प्रकार शास्त्रभी तुमको कर्तव्य, अकर्तव्य बताता है तथा कल्याणका रास्ता बताता है। उस ओर जानेके लिए तुमको पैर बढाना होगा। हमारे लिए पाप दुख देनेवाला है उसे छोडो। दूसरोंको उपकार, दया, सदाचार और सब जीवोंके साथ प्रेमभाव और परमात्माकी उपासना करनेवाला पुण्य प्राप्त करो। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुपार्थ है। इसमे मोक्ष श्रेष्ट है यही ध्येय है। धर्मकी आराधना द्वारा अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है इसलिए धर्म पुरुपार्थ महत्वका है। आचार्य उमास्वामीने सम्यक्दर्शन ज्ञान तथा चारित्रको मोक्षका मार्ग कहा है। केवल सम्यक्त्वके

ाद नही होता है। जिनेंद्र भगवानकी वाणीपर
नेसे सम्यक्त्व होता है। जिनेंद्र भगवानकी वाणीका
भी जब कल्याण करता है तो संपूर्ण जिनागमका
क्या नही करेगा ? इस पंचम कालमे केवली
नही है। इस समय किसका अवलंबन किया जाय ?
भगवानकी वाणीके सिवाय अन्यत्र कल्याण नही
ंद्र भगवानकी वाणी पूर्णतया सत्य है। जिनेंद्रका
ाही होगा तो श्रावकोंका धर्मभी नही रहेगा और
 अभावमे मुनिधर्म कैसे रहेगा ? मुनिधर्म जबतक
बतक जिनधर्म रहेगा। भगवानकी वाणीमे लिखा है
 कालमे अंततक मुनिधर्म रहेगा। यह बात कभी
ी होगी।

अज्ञात अंधकारमें चलनेवाले जीवोंको शास्त्र अजीब
भी मोक्षका मार्ग बताता है। जो बात आदिनाथ
ने कही थी वही बात दूसरे तीर्थंकरोंने बताई। कोटा–
ागरोंपर्यंत काल बीतनेपर भी जिनेंद्र वाणीमे कोई
ही पडा है इसलिए महावीर भगवानके मोक्ष जानेके
वर्षके भीतर कोई अंतर नही हुवा है। इस बातपर
द्धा रखनी चाहिये।

संयमका लक्ष इंद्रिय और मनको जीतना है। तपश्चरण
छातीपर सवार होकर कर्म क्षय करता है। कर्म
वह औषधी है। कडवी औषधिसे रोग समूल नष्ट
ता है। रोगीको शक्कर घीकी दवाई नही दी जाती

है। इसी प्रकार जन्म मरण समूल परिग्रहणका रोग दू
करनेके लिए उपवास तथा तपश्चरण किया जाता है। इसके
ऊपर एकदम बड़ा बोझ डाल दिया जाय तो उसे वह संभाल
नहीं पाता है किन्तु यदि धीरे २ बोझा बढ़ाया जाय तो स
सहन हो जाता है। इसी प्रकार थोड़ा २ व्रत तथा उपवास
भार बढ़ानेसे आत्माको पीड़ा नहीं होती और और
शक्ति बढ़ते जाती है।

हमारे यह अनुभवकी बात है। महाराज कृष्णके बड़े
बंधु जो बलराम थे पूर्व भवमें वे अत्यंत कुरूप, बुद्धिहीन
तथा निर्धन थे। जगतमें रूप, विद्या, धनमेंसे कोई एक भी
होती है तो जीव आदरको प्राप्त करता है। किन्तु इन
विशेषताओंसे शून्य यह जीव सर्वत्र निरादरका पात्र बन
उसने सद्गुरुका शरण लिया जिन्होंने उसके दुःख दूर कर
नेका उपाय अहिंसापूर्ण तपस्या करना बताया। वह
तपश्चर्यामें निमग्न हो गया, जिसके फलस्वरूप वह विद्या,
वैभव तथा सौंदर्य संपन्न बलरामके रूपमें उत्पन्न हुआ।

इसलिए सुखी बननेका उपाय धनकी छीनाझपटी
कलह, अनीति, अत्याचार नहीं है। उसका प्रशस्त मार्ग है
इंद्रियोंका निग्रह तथा संयमका साधन पवित्र पुरुषार्थ
सुख पाना हमारे हाथमें है। मोक्ष प्राप्तिके समयके पहले
यदि संयम और व्रत पालन किया तो जीव उस सुखको
करता है। जिसकी सब कामना करते हैं। संयम पा
करनेके लिए दैवका अवलंबन छोड़ पुरुषार्थका आश्रय
चाहिये। विपत्ति आनेपर हिम्मत हारना सच्चे पुरुष

ं नहीं है । जब पापोदयका वेग हो तब कुछ समय बिना करते हुये, शांत रहना चाहिये । पापका वेग मंद होते ही उस कालमें पुरुषार्थ कर सदाके लिए संकटमुक्त होना चाहिये । संयमको पालते हुए मृत्यु अनुकूल है । संयमके बिना यह प्रतिकूल है । शास्त्रोंमें प्रशंसा कथन ही उत्सर्ग मार्गमें किया है । कहीं अपवाद मार्गका कथन किया जाता है । हम अपने उपदेशमें विधि मार्ग उत्सर्ग मार्गका कथन करते हैं । हम अपवादका कथन नहीं करते हैं । अतः शिथिलाचारी लोग धर्म मार्गको छोड़कर पतनकारक प्रवृत्तिको सुधार कार्य कहते हैं किंतु यह सच्चा सुधार नहीं है । कर्मक्षयकी भूमि कर्मभूमि है इस भूमिसे समस्त कर्मोंका क्षय किया जाता है । इससे इसे कर्मभूमि कहते हैं, तथा यह कर्मोंसे जीविका की जाती है । इसलिए भी कर्मभूमि कहते हैं । इस संसारके अनित्यका हम रोज विचार करते हैं । एक समय एक व्यक्तिने भक्तिपूर्वक हमको आहार कराया । इसके अनंतर वह घर गया । वहां भोजन करनेके लिए एक ग्रास हाथमें लिया कि तत्काल उसके प्राण चले गये । यह घटना कोगनोळी ग्राममें हुई थी । पांडवपुराणमें लिखा है कि प्रतापपुंज श्रीकृष्ण महाराजके चरणमें जराकुमारके बाणके लगतेही उनकी जीवनलीला समाप्त हो गई । इसलिए सत्पुरुष इस जीवका आत्मकल्याण करनेके लिए निरंतर प्रहरीके समान सचेत करते हैं । गीतामें लिखा है कि ईंधनके द्वारा अग्निकी तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार विषय सेवनसे कामनाओंकी पूर्ति नहीं होती ।

ंयमकी ज्वालासे निकालकर संयमके मार्गमें लगाते है।
ःमपूज्य आचार्य शांतिसागर कहते है कि हमने अपने भाईको
टुम्बके ज़ालसे निकालकर दिगम्वर मुनि वनाया उसे
र्धमानसागर कहते है। छोटे भाईको ब्रह्मचर्य प्रतिमा दी
ोर उसे भी मुनिदीक्षा देते किंतु उसका शीघ्र मरण हो
या। हमारे मनमें उन लोगोंपर वडी दया आती है जो
मारी खूब सेवा भक्ति करते हैं, जो हमारे पास वार २
ाते है किंतु व्रत पालन करनेसे डरते है। मदोन्मत हाथीको
कडनेके लिए कुशल व्यक्ति इसे कृतिम हथिनीकी ओर
ाकर्षित कर गहरे गड्ढेमें फंसाते है, उसे वहोत समयतक
ूखा रखते है। इसी प्रकार इंद्रिय और मन उन्मत्त होकर
ुस जीवको विवेकशून्य वनाकर पाप मार्गमें लगाते है। उपवास
करनेसे इंद्रिय और मनकी मस्ती दूर होकर आत्माके आदेशा-
नुसार कल्याणकी ओर प्रवृत्ति होती है।

आज कोई २ कहते हैं कि राष्ट्रहितके लिए वंदर चूहे
आदि धान्यघातक जानवरोंको मारे विना अन्नकी समस्या हल
नही होगी। उनके सवव अनाजकी उपज कम हो गई है किंतु
निरपराधी जीवोंसे न व्यक्ति पनपला है न राष्ट्रकोही प्रास्तविक
उन्नति संभव है। बेचारे वंदर आदि निरपराध जीव है। वह
भय दिखानेसे भाग जाते हैं। उनका प्राण लेना संकल्पी हिंसा
है। वे अपने पेटके योग्य अनाज लेते है उसका मनुष्योंकी
तरह संग्रह नही करते है। उनका घात करनेसे कभीभी सुख
नही होगा। खेतीमें तीन चौथाई भाग पशुवोंका रहता
है। आखिर वे प्राणभली प्राणी किसपर जीवित रहेंगे? आज

ावीर स्वामीके निर्वाण पीछे एक सहस्र
चतुर्मुख नामका कल्की होता है जिसकी
सा राज्यकाल ४२ वर्ष है। वह कल्की
जैन पदको सिद्ध करके कालेकी होकर
ा प्रथम ग्रास टैक्स मांगेगा तब मुनिराज
और यह समझकर कि अन्तरायोंका काल
ोंमेंसे एक मुनिराजको अवधिज्ञान उत्पन्न हो
बाद कोई असुरदेव अवधिज्ञानसे मुनियोंके
उस कल्कीको धर्मद्रोही जानकर मार डालता
एक २ हजार वर्षोंके पश्चात् पृथक् पृथक्
र पांचसौ वर्षोंके पश्चात् एक २ उपकल्की
ेक कल्कीके प्रति एक २ दुःखमाकालवर्ती
ान प्राप्त होता है और उनके समयमें धानु-
जाते हैं। अंतमें २१ वें कल्कीके समय
एक मुनि, सर्वश्री श्राविका, अग्निदत्त और
ावक श्राविका होते हैं। वह कल्की मुनिराजके
टैक्स रूपमें देनेको मंत्रीको कहता है। मुनि-
से अपनी तथा सबकी आयु तीन दिनकी
चारों संन्यासपूर्वक समाधिमरण करते हैं।

 है धन नहीं। धर्म पालन करनेवाला श्रीमंत
। पश्चिम देशोंमें धन वैभव कितनाही अधिक
श्रीमंत भारतमेंही मिलेगा। हमें भगवानको
ो चिंता है इसे तुम लोग क्या जानो ? वंध्या
ो क्या समझे ? श्रुतका रक्षणकार धरसेन

स्वामीने बडा उपकार किया। उनके उपकारको कैसे भू
जाय? इसीलिए तो फलटणके मंदिरमें उनकी मूर्ति
स्थान करवा दी है। अरे बाबा! यह जिनवाणी
प्राण है। आज भी धर्ममें अपार शक्ति है। तुम्हारे
शक्ति होना चाहिये। परिणामोंमें चंचलता रही
नहीं हो सकता। भगवानकी भक्ति करनेसे उनके
आपकी सहायता करते है। हमें अपनी आत्माके
परपदार्थकी कोई चिंता नही है। हम तो हनुमान
जिसका मंदिर गांवके बाहर रहता है। गांवके
मानका क्या बिगडता है? इसी प्रकार संसारमें कुछ
जाय, तो हमें उसका क्या डर? हम किसीसे
केवल जिनेंद्र भगवानकी वाणीसे डरते है। बाहुबली
मूर्ति बडी है। वह जिनबिंब हमें अन्य मूर्तियोंके
हम तो जिनेंद्रके गुणोंका चिंतवन करते है। इसलि
मूर्ति और छोटी मूर्ति इसमें क्या भेद है। जो लो
रको रोगी देख संयमसे डरते है उन्हे रोगसे न
यथाशक्ति संयमका पालन करना चाहिये।

देवोंको चकित करनेवाले सौंदर्यवाले सनत्कुमार
वर्तीने जब मुनिपद धारण किया तो उनके सुन्दर
रोगने जर्जरित कर दिया था, उनकी तुलनामें हम क्या
है? रोगके डरसे हम क्या व्रत उपवास नही करेंगे?
होनेपर कभी भी व्रत पालनमें शिथिलता नही
चाहिये। यदि क्षुल्लक रोगी होनेपर डोलीमें बैठ
और यदि उसे कहार उठाते है तो इससे पीडा क्या हु

ोंके द्वारा ईर्यासमितिका पालन नही होगा। इसलिये
में चलनेमें क्या अर्थ हैं। हम व्यवहार धर्मका पालन
हैं, भगवानका दर्शन करते है। प्रतिक्रमण, प्रत्या-
करतें है। सभी क्रियाओंका यथाविधि पालन करते
न्तु हमारी अंतरंग श्रद्धा निश्चयपर है। जिस समय जो
ाव्य हैं, उसे कोई भी अन्यथा नही परिणमा सकेगा।
हमारा निश्चयपर एकांत नही है। दूसरोंके दुःख कर-
विचार करुणावश है। आज यदि अवधिज्ञानभी होता
या विशेष बात होती? संसारमे जो सुख-दुख भोगना
तो भोगनाही पडेंगे। आज अवधिज्ञान नही है तो
हुवा, पहले एक कोटि पूर्वकी आयु होते हुवे लोग आठ
ो अवस्थामें मुनिव्रत तप करते थे। आज प्राय: लोगोंका
न सौ वर्षके भीतर रहता है। थोडासा जीवन शेष
पर भी लोंगोंको अपना कल्याण नही सूझता। जिसकी
वर्षसे अधिक आयु हो गई वह यदि जीवित रहेगा तो
वर्षके लगभग। इसलिए ऐसे अल्प समय रहनेपर अपने
ाणकी ओर बढनेमे तनिकभी प्रमाद नही करना
ये। गधेकी पूछ पकडकर लात खाते जाना अच्छा नही।
अपने प्रेमी भक्तोंको धक्का लगाकर असंयमके गढ्ढेसे
ालते है जिससे आंख बंद होनेके पहले २ वे अपना हित
लें। अरे भाई! जंगलमें आग लगनेपर वह आग कई
ांतक रहती है तब कहीं वनका दाह होता हैं। कर्मोंकी
ा एक दिनमे नही जल जाती।

बंधका स्पष्ट तथा प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र यमें महान् है। बंधका ज्ञान होनेपरही मोक्षका होता है। पहले समयसार नही चाहिये, पहले चाहिये। पहले सोचो क्यों? दुःखमें पडे है, है। ३६३ मतवाले सुख चाहते है किंतु मिलता नही कर्मक्षयका मार्ग ढूंढना है। भगवानने मोक्ष बनायी है। चलोगे तो मोक्ष मिलेगा इसमें बंधका ज्ञान होतेही जीव पापसे बचता है। इससे निर्जरा होती है। बंधका वर्णन पढनेसे मोक्षका होता है। अतः पहले बंधका ज्ञान होना आवश्यक है।

गिरनारजीकी यात्रासे लौटते समय कानजी हमको तक लेने गये। सोनगढमें आकर हमने कानजीसे पूछा, " इस दिगंबर धर्ममें तुमने क्या अच्छा देखा? तुम्हारे धर्ममें क्या बुरा था?" इस प्रश्नके उत्तरमें कुछ नही कहा। प्रायः एक घंटेतक मुखसे एक शब्द नही कहा। कानजीने कहा महाराज, समयसारकी एक कहा है, नव पदार्थ भूतार्थ है। यह गाथा प्रक्षिप्त होती है। जीव पदार्थ भूतार्थ हो सकता है। कके बाद हमने पूर्वापर प्रसंगकी गाथाएं देखी फिर हर प्राणीको सम्यक्त्व खोजना है। उसे सम्यक्त्व मिलेगा? जीवमें मिलेगा यही उत्तर होगा। जीवका आस्रव, बंध, संवर आदिके साथ है। जीव इकाई है, शेष सब उसके साथ शून्यके समान है। इससे सारकी गाथा प्रक्षिप्त नही हो सकती। इस विवेचनको कर कानजी चुप हो गये।

तीन स्मरणीय बातें

१) इस समयभी विदेह क्षेत्रमें आठ लाख अठ्ठानवे हजार पांचसो केवलज्ञानी विद्यमान हे, इसमें वीस तीर्थंकर हे ।

२) वज्रदन्त चक्रवर्तीको वैराग्य होते ही उनके सहस्त्र लडकोने लाख वार मना करनेपर भी चढे हुवे यौवनमें राजवैभवको एकदम छोड दिया । जब चक्रवर्तीको विवश होकर छह महिनेके पोतेका राज्यतिलक करना पडा, कतिपय पुत्रोने तो पितासे प्रथमही अष्ट कर्म नष्ट कर दिये थे ।

३) एक इंद्रकी उमरमें चार कोटाकोटी (४० नील) इन्द्रमणिया क्रमसे स्त्री लिंगको छेदकर मोक्ष चली जाती हे । तब इन्द्र नरपर्याय लेकर मुक्तिको प्राप्त करता हें ।

बंधका स्पष्ट तथा प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र यथार्थमें महान् है। बंधका ज्ञान होनेपरही मोक्षका बराबर ज्ञान होता है। पहले समयसार नही चाहिये, पहले महाबंध चाहिये। पहले सोचो क्यों? दुःखमें पडे है, क्यों नीचे हैं। ३६३ मतवाले सुख चाहते है किंतु मिलता नहीं। हमें कर्मक्षयका मार्ग ढूंढना है। भगवानने मोक्ष जानेकी सडक बनायी है। चलोगे तो मोक्ष मिलेगा इसमें शंका क्या है। बंधका ज्ञान होतेही जीव पापसे बचना है। इससे कर्मकी निर्जरा होती है। बंधका वर्णन पढनेसे मोक्षका ज्ञान भी होता है। अतः पहले बंधका ज्ञान होना आवश्यक है।

गिरनारजीकी यात्रासे लौटते समय कानजी हमको दूर-तक लेने गये। सोनगढमें आकर हमने कानजीसे एक प्रश्न पूछा, "इस दिगंबर धर्ममें तुमने क्या अच्छा देखा? और तुम्हारे धर्ममें क्या बुरा था?" इस प्रश्नके उत्तरमें कानजीने कुछ नही कहा। प्रायः एक घंटेतक मुखसे एक शब्द भी नहीं कहा। कानजीने कहा महाराज, समयसारकी एक गाथामें कहा है, नव पदार्थ भूतार्थ है। यह गाथा प्रक्षिप्त मालूम होती है। जीव पदार्थ भूतार्थ हो सकता है। सामायिकके बाद हमने पूर्वापर प्रसंगकी गाथाए देखी फिर कहा हर प्राणीको सम्यक्त्व खोजना है। उसे सम्यक्त्व कहां मिलेगा? जीवमें मिलेगा यही उत्तर होगा। जीवका संबंध आस्रव, बंध, संवर आदिके साथ है। जीव इकाईके समान है, शेष सब उसके साथ शून्यके समान है। इससे समयसारकी गाथा प्रक्षिप्त नही हो सकती। इस विवेचनको सुनकर कानजी चूप हो गये। ०००

तीन स्मरणीय बातें

१) इस समयभी विदेह क्षेत्रमें आठ लाख अठ्ठानवे हजार पांचसो केवलज्ञानी विद्यमान है, इसमें वीस तीर्थंकर है ।

२) वज्रदन्त चक्रवर्तीको वैराग्य होते ही उनके सहस्र लडकोने लाख बार मना करनेपर भी चढे हुवे यौवनमें राजवैभवको एकदम छोड दिया । जब चक्रवर्तीको विवश होकर छह महिनेके पोतेका राज्यतिलक करना पडा, कतिपय पुत्रोने तो पितासे प्रथमही अष्ट कर्म नष्ट कर दिये थे ।

३) एक इंद्रकी उमरमें चार कोटाकोटी (४० नील) इन्द्रमणिया क्रमसे स्त्री लिंगको छेदकर मोक्ष चली जाती है । तब इन्द्र नरपर्याय लेकर मुक्तिको प्राप्त करता हैं ।

कार्य सिद्धिके लिए व्यवहार तथा निश्चय दोनों नयोंका अवलंबन आवश्यक है। वस्तुस्वरूप समझनेके लिए उनका आश्रय लेनाही अनेकान्त है।

चतुर्थ गुणस्थानके आगे देव बढ नही सकते। मनुष्य अपनी पुरुषार्थके द्वारा चौदा गुणस्थानोंको पार कर सकता है।

विषय तथा कषायही आत्माके अहितके कारण हैं।

रागद्वेषकी उत्पत्तिका नही होनाही वास्तवमें अहिंसा है।

केवल निश्चयका अवलंबन जैसे मिथ्यात्व है, उसी प्रकार केवल व्यवहारका अवलंबन भी मिथ्यात्व है।

जहां भी आत्माके चरित्र गुणका घात है, वहां हिंसा ही है।

अमूर्तिक आत्मा दिखनेकी वस्तु नही, वह तो अनुभव गोचर है।

वक्ताका असर दूसरोंपर स्वयंके आचरण विना नही पड सकता।

आत्मज्ञानके विना एकादश अंगका ज्ञान भी कार्यकारी नही।

जीव तथा शरीर दोनोंका संबंध अनादि कालसे चला आता है। इसीसे अज्ञानी जीव दोनोंको एक मान लेता है किंतु ये दोनों भिन्न २ है। आत्महित चाहनेवालोंको अपने निजस्वरूपकी ओर लक्ष देना चाहिये।

आहारके लिये संकल्प करके दो वार निकलनेसे एक आहारकी प्रतिज्ञा दूषित होती है इसलिए सवेरे या दोपहरके वाद एकही वार चर्याको निकलना धर्मका मार्ग है। चर्याको निकलते हुवे आहार न पानेवाले मुनिका उपवास नही कहा जायगा। आहारका त्याग करना और आहारका न मिलना दोनों स्थितिमें जो अंतर है उसे ज्ञानवान् आदमी सहजही विचार कर सकता है।

व्रती शुध्द घानीका निकला शुध्द तेल ले सकता है। व्रतीको खोटी साक्षी देते नही जाना चाहिये। नलका पानी नही पीना चाहिये। जिस कुवेमे चमडेकी मोट चलती है, उसमे मोट वंद होनेके दो घंटेवाद पानी लेवे। सामायिकमें भगवानका जप करें तथा एकदेश आत्मचिंतन करें।

मुनिराजकी मृत्यु होनेपर उनकी देहको पद्मासन करो पंचामृतसे शरीरके पृष्टभागका स्नान कराओ, कमडंलुको आगे रखो और गर्दनके पीछे पिछीको रखकर शरीरका दाह करो। दाह करनेके बाद शरीरकी भस्मको आदरपूर्वक लगाओ।

गृहस्थकी मृत्यु होनेके वाद शरीरकी दाह हो जानेपर अवशेष हड्डी आदिको नदीमें कभी मत डालो। उस क्षारसे वहोत जीव मर जाते है। जमीनमें गड्डा करके उस अवशेषको गडा देना चाहिये। लोकरुढिवश नदीमें डालनेकी सार्वजनिक प्रवृत्तिका अनुकरण नही करना चाहिये।

अष्टानिक या दशलक्षण व्रतमें जिस वर्ष विघ्न जावे, उसकी पूर्ति आगामी वर्षमे कर लेवे। सोलहकारण १६ दिनकाभी किया जाता है। कोई २ व्रत ऐसे होते है जिसमें वाधा आनेपर पूरा व्रत पुनः करना पडता हैं।

स्वभाव विभाव शक्ति लोक तथा सप्त तत्वोंका स्वरूप

आत्माका यथार्थ हित निज स्वभावकी प्राप्ति है। जैसे अपने विपुल संपत्तिके खो जानेपर लोग दुःखी होते हैं और जबतक वह मिल न जावे तबतक सुखी नही हो सकते। उसी प्रकार निजस्वभावरूप संपत्तिके लुप्त हो जानेसे ये संपूर्ण प्राणी दुखी हो रहे है और उस संपत्तिको पुनः प्राप्त किये-बिना कदापि सुखी नही हो सकते। यद्यपि संसारके सभी प्राणियोंकी यह इच्छा रहती हैं कि सुखकी प्राप्ति हो और दुख हमारे पासभी न फटकने पाये परंतु हजार प्रयत्न करनेपर हजार सिर पटकनेपरभी वे सुखी नही हो सकते। जिसको देखिए वही दुखी दिखलाई देता है। जिसको पूछिये वही दुखियोंका शिरोमणि बतलाता है और जहां सुनिये वहां दुखही दुख सुनाई पडता है। इसका कारण यही कि सुखके यथार्थ स्वरूपको नही जानते है और दुखमेही सुखकी कल्पना किया करते है, परंतु जो अज्ञानी अंगारको सुंदर शीतल मानकर हाथमें ले लेता हैं क्या वह उससे जलकर दुखी नही होगा? अवश्य होता है। इसी प्रकार दुखमे सुखकी कल्पना करनेसे उन्हे दुख सुखरूप नही हो सकता दुखही रहता है। सो ये प्राणी इस भ्रामक सुखकी प्राप्तिका प्रयत्न करते रहते है परंतु यथार्थ सुखरूप निजस्वभाव संपत्तिको सर्वथा भूल गये है जो कि आत्माका सच्चा हित है। आत्मस्वभावपर एक

कारका दुर्निवार परदा पडा हुवा है जिससे हम उसे देख
ही सकते । यही कारण है कि सामान्य जीवोंकी प्रवृत्ति
उसकी ओर नही जाती ।

आत्मामें विकार क्यों होता हैं ?

जव आकाश, काल, धर्म, अधर्म ये चार द्रव्य कभी
कारी नही होते हैं । अपने आकर्तिक स्वभावमेंही स्थिर
ते हैं । तव आत्मामें विकार होनेका क्या कारण है ? जव
आत्मा भी उक्त चार द्रव्योंके समान आकर्तिक है ।
का समाधान यह है कि जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमें
ंत गुणोंके साथ एक वैभाविक गुणभी है । उसे वैभा-
क शक्तिके नामसे शास्त्रोंमें कहा गया हैं । वह वैभाविक
गभी ज्ञानादि गुणोंके समान नित्य हैं । उस वैभाविक
क्ति (गुण) की दो पर्यायें होती हे । एक स्वभाव पर्याय
सरा विभाव पर्याय । जव कर्मजनिक रागद्वेपादि निमित्त
लते है । तव विभाव पर्याय रहती हैं । और जव राग-
षादि विकारी भाव आत्मासे हठ जाते हैं तव वह वैभा-
क गुण स्वभाव पर्याय धारण करता हैं । अनादि कालसे
त्मा विकारी भावोंमे चला आ रहा है । अतः विभाव
र्यायमें वना रहता हैं किंतु जव विकारभाव आत्मासे हठ
ाता हैं तव वह आत्मा सिद्धपदमें स्वभाव पर्यायमें सदैवके
लए वना रहता है ।

इसी प्रकार पुद्गलकी दशा है । उसमें वैभाविक
शक्ति है । अतः निमित्तकारण वन्ध एवं परस्पर परमाणु-

नमें कुछ तो सामान्य गुण हैं और कुछ विशेष गुण हैं। जो गुण दूसरे द्रव्योंमें भी पाये जावें उन गुणोंको सामान्य गुण कहते हैं और जो गुण अन्य द्रव्यमें पाये न जाय केवल एकही द्रव्यमें हो उन्हें विशेष गुण कहते हैं। जैसे जीवका अस्तित्व वस्तुत्व प्रदेशत्व आदि सामान्य गुण हैं, क्योंकि जीवके सिवाय पुद्गलादि द्रव्योंमें भी यह पाया जाता है। अर्थात् पुद्गलादि द्रव्य भी अस्तित्व वस्तुत्व प्रदेशवान होते हैं। और चेतना असाधारण गुण है क्योंकि जीवके सिवाय अन्य कोई भी द्रव्य चेतनवान नहीं है। जीवका निर्दोष असाधारण लक्षण चेतना है। इसी प्रकार पुद्गलका लक्षण मूर्तत्व अर्थात स्पर्श, रस, गंध, वर्णवत्व है। धर्मद्रव्यका लक्षण जीव पुद्गलके गमन करनेमें सहायकरूप है। अधर्म धर्मका लक्षण जीव पुद्गल ठहरनेमें सहायकरूप है। आकाशका लक्षण जीवादि द्रव्योंको अवकाश देनेका है और काल द्रव्यका लक्षण जीवादिक पदार्थोंको परिणमन कराना है। द्रव्योंका संक्षेपमें यही स्वरूप है। इन छहों द्रव्योंमें एक जो पुद्गल द्रव्य है उसके मुख्य दो भेद हैं, एक अणु और दूसरा स्कंध। पुद्गलके सबसे छोटे खंडको अणु कहते हैं और अनेक परमाणुओंके समूहको स्कंध कहते हैं। इनके अनेक भेद हैं। जिनमेंसे एक स्कंध विशेषको कार्माण-वर्गणा और नो कार्माणवर्गणा कहते हैं जो कि संसारके प्रायः सर्वत्र भरी हुई हैं और जिसकी संख्या अनंत है। जिस प्रकार आगमें तपाया हुवा लोहेका गोला जलमें डालनेसे वह अपने चारों तरफके जलको खींचता है उसी प्रकार यह आत्मा रागद्वेषसे संतप्त होकर कार्माणवर्गणाओंको अपने

तरह चारों ओरसे आकर्षित करता है जीव ऐसा है। इ
कार्माण की वर्गणाओंके आत्मप्रदेशोंके साथ संबंधको ब
कहते हैं और जीवसे संबंध प्राप्त कार्माण वर्गणाओंकोही क
कहते हैं। इनके कारण आत्माके ज्ञानादिक गुणोंका घा
होता है, अर्थात ज्ञानादिक गुण ढक जाते हैं। इसीसे इ
कर्मावरण अथवा कर्मरूपी परदा कहते हैं।

जीव और कर्मका संबंध अनादि कालसे बीजवृक्षके
समान चला आता है। अर्थात जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता
है और वृक्षसे बीज उत्पन्न होता है उसी प्रकार आत्मा और
कर्मका निरंतरसे अनादि संतानरूप क्रम है। कोई समय ऐसा
नही था जबकि विना वृक्षके बीज उत्पन्न हुवा हो। इसी
प्रकार कर्मके निमित्तसे आत्माके रागद्वेषादि भाव उत्पन्न
होते है। रागद्वेषादि भावोंके कारण कर्म बंध होता है अर्थात
रागद्वेष होनेसे पुरातन कर्म बंध हेतु है और नवीन कर्म
बंध होनेसे रागद्वेष हेतु है। कभी ऐसा नही हुवा कि विना
रागद्वेषोंके कर्म बंध हुवा हो अथवा पूर्ण कर्म बंधके बिना राग-
द्वेष उत्पन्न हुवे हो। सारांश यह कि यह संसारी आत्मा
अनादि कालसे कर्मबंधसहित है अर्थात सदैवसेही उसपर
कर्मावरण पड़ा हुवा है। यह कर्मावरण आत्माके स्वभावके
अनेक प्रकारके विकार करता है जिनके कारण यह
प्रकारके दुःख भोगता है और अनादि कालसे पड़कर
स्वभाव सुखसे वंचित रहता है जो अचिन्त्य, अनुपम
अनंत है। कर्मोके मुख्य भेद आठ है। ज्ञानावरणीय, द
र्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंत

नमेसे पहला ज्ञानावरणीय कर्म आत्माके ज्ञान गुणको ढक देता । दूसरा दर्शनावरणीय कर्म आत्माके दर्शन गुणको ढक ता है अर्थात उसके कारण आत्माकी अनंत दर्शन शक्ति की रहती है । तीसरा वेदनीय कर्म आत्माके अव्यावाध णका घात करता है अर्थात आत्माकी वाधारहित शक्ति क जाती है । चौथे मोहनीय कर्मके दो भेद है, एक दर्शन मोहनीय और एक चारित्र मोहनीय । दर्शन मोहनीयसे आत्माका सम्यक्दर्शन गुण विकारी वन जाता है और चारित्रमोहनीयसे चारित्र गुण विकारी वन जाता है । आयु- कर्म आत्माके अवगाहन गुणका घात करता है । गोत्रकर्म अगर लघु गुणका घातक है और अंतराय कर्म वीर्य गुणका घात करता है । जिस समय आत्मा रागद्वेषसे संतप्त होता है उस समय उसके साथ कार्माण वर्गणाओंका संबंध होता है, इस संबंधकोही वंध कहते है । यह वंध चार प्रकारका है, प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध, अनुभागवंध । कर्ममें आत्माके गुणोंके घात करनेकी शक्तिका नाम प्रकृतिबंध है । यह ज्ञानावरणादिप आठ प्रकार आत्माके प्रदेशोंमेसे एक २ प्रदेशपर अनंतानंत कर्म वर्गणाओं संसारी जीवके प्रदेशो और पुद्गलके एक क्षेत्रावगति होनेको प्रदेशवंध कहते है । कौन वर्गणा कितने समयतक आत्माके साथ वंधरूप रहेगी इस प्रकारकी स्थितिका प्रमाण वंधनेको स्थितिबंध कहते है और कर्मोकीही तात्विक फलदान शक्तिको अनुभागवन्ध कहते है । प्रत्येक कर्मकी मुख्य चार अवस्थामें होती है । उदय उपशम, क्षम, और क्षमोपशम । कर्मके [illegible]

जानेको मोक्ष कहते हैं। इसके भी दो भेद है, द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष। आत्मा तथा कर्मके परस्पर संबंध छूटनेको द्रव्य-मोक्ष और आत्माके परम विशुद्ध परिणामोंको भावमोक्ष कहते हैं। समस्त कर्मोंसे रहित होनेपर यह आत्मा अपने उर्ध्व गति स्वभावसे ऊपर गमन करके लोकके अंतमें विराजमान हो जाता है। धर्म द्रव्यका अभाव होनेके कारण उसकी लोकके बाहर गति नही होती और उस मुक्तात्माके राग-द्वेशादिकोंका सर्वथा अभाव हो जाता है, इसीलिये फिर कर्म बंध नही होता और इस कारण उसका चतुर्गतिरूप संसारमें परिभ्रमण नहीं होता है। मोक्ष महलमें यह सदाकाल अवि-नाशी अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करता है। ☙❧

---

१) मुर्खोंका गुरु बननेकी अपेक्षा ज्ञानीका शिष्य बनना उत्तम है। —आचार्य शांतिसागर महाराज

२) समस्त संसारकी रक्षा केवल धर्मसेही हो सकते है।
—आचार्य गुणभद्रजी

३) पवित्र कार्यमे विघ्न प्रायः आया करते हैं।
—आचार्य सोमदेवजी

४) पहले हजार वर्ष तप करनेपर जितना कर्मोंका नाश होता था वह आज हीन संहननमें एक वर्ष तपद्वारा कर्मोंका नाश होता है। —देवसेनाचार्य

—संग्रा शैलेंद्रकुमार कार

जानेको मोक्ष कहते हैं। इसके भी दो भेद है, द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष। आत्मा तथा कर्मके परस्पर संबंध छूटनेको द्रव्य-मोक्ष और आत्माके परम विशुद्ध परिणामोंको भावमोक्ष कहते है। समस्त कर्मोसे रहित होनेपर यह आत्मा अपने ऊर्ध्व गति स्वभावसे ऊपर गमन करके लोकके अंतमें विरा-जमान हो जाता है। धर्म द्रव्यका अभाव होनेके कारण उसकी लोकके बाहर गति नही होती और उस मुक्तात्माके राग-द्वेषादिकोंका सर्वथा अभाव हो जाता है, इसीलिये फिर कर्म बंध नही होता और इस कारण उनका चतुर्गतिरूप संसारमें परिभ्रमण नहीं होता है। मोक्ष महलमें वह सदाकाल अवि-नाशी अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करता है। (क्रमशः)

---

१) मूर्खोका गुरु बननेकी अपेक्षा ज्ञानीका शिष्य बनना उत्तम है। —आचार्य शांतिसागर महाराज

२) समस्त संसारकी रक्षा केवल धर्मसेही हो सकती है। —आचार्य गुणभद्रजी

३) पवित्र कार्यमे विघ्न प्रायः आया करते हैं। —आचार्य सोमदेवजी

४) पहले हजार वर्ष तप करनेपर जितना कर्मोका नाश होता था वह आज हीन संहननमें एक वर्ष तपद्वारा कर्मोका नाश होता है। —देवसेनाचार्य

—संग्रा शैलेंद्रकुमार काल

रावणको संबोधनकर उसने कहा कि हे दशानन !
हुऐ तुम सदा धर्ममें ध्यान रखो, इस कारण आज भीषण
नर्क धाम तुम्हें भोगने पड़ रहे हैं। विषयोंमें रत होकर
अपना कल्याण नहीं कर सके। परन्तु मोहके कारण
पर पापको तुम चूक गये। मुनिने अपने दोनों हाथ
फिर कहा कि चलो हमारे साथ, किन्तु हाथोंका स्पर्श
ही उसका शरीर पिघल गया तब रावणने कहा कि
भवने जो दुष्कार्य मैंने किये हैं उनीका फल मैं भोग
रहा हूं। किन्तु आपके शुद्ध बोलसे मेरा आत्मा भविष्य
स्पष्ट हो गया है। आत्मकल्याणका मूल जो सुबोध उसको
अपनाया। मैं उसीका ध्यान रख कभी उसे नहीं भूलूंगा।

खरदूषण आदि जीवोंको सम्यक्ज्ञान प्राप्त कराकर
सीतेन्द्र ज्ञानके निधान प्रभु रामचंद्रजी जहां विराजमान
वहां आया तथा उनकी स्तुती कर कहा कि हे प्रभु !
आपका समागम अब मैं कैसे प्राप्त कर सकूंगा कारण
अब तो आप मोक्षधाम पधारेंगे। तब अपने ज्ञानसे सबको
जानने वाले भगवान रामचंद्र कहते हैं कि हे प्रतेंद्र ! विश्व
भ्रमणका कारण यह बलवान रागद्वेषही है, विकारोंको छोड़
जो आत्मध्यानमें लीन हो जाते हैं वे सर्व प्रकारके विकृतिको
त्याग कर अजर अमर पदको प्राप्त करते हैं। फिर वे
भगवान लव, कुश, दशरथ, जनक, सुमीत्रा, कैकयी, कौशल्या
भामंडल आदिके आगामी भवोंका वर्णन करते हुये अच्युत
स्वर्गसे चयकर तुम चौदह रत्नोंके अधिपति चक्रवती
होवोगे। सातवे स्वर्गसे चयकर लक्ष्मण तथा रावण दोनों

जो ज्ञानही परम अमृतके समान है । इस ज्ञान-
रूपी औषधिसे जन्म, जरा और मरणरूपी तीनों रोग दूर
होते हैं । ज्ञानके बिना अज्ञानी जीव करोड़ों जन्म
तक जितने कर्मोंको दूर करता है, उतने कर्मोंको ज्ञानी
व एक क्षणमात्रमें अपने मन, वचन, कायको रोकनेसे ना-
श कर देता है । इस जीवने अनेक बार मुनिव्रत धारण
ा है और ग्रैवेयिक विमानोंमें भी उत्पन्न हुआ परन्तु
ज्ञानके बिना इसे कभी भी सुख प्राप्त नहीं हुआ । इस-
ि जिन भगवानके कहे हुये तत्वों और शास्त्रोंका अभ्यास
ना चाहिये और संशय, विमोह, विभ्रम इन तीनोंको
कर आत्माको पहिचानना चाहिये । यह नर भव आत्म-
हुये बिना बीत गया तो इसका पाना फिर वैसाही
न है, जैसे समुद्रके भीतर गिरे हुये रत्नका मिलना
न है । धन, समाज, हाथी, घोड़ा, राज्य आदि कोई
ी काम नहीं आता है । ज्ञान जो आत्माका स्वरूप है,
के होनेसे आत्मा निश्चल रहता है । अर्थात केवलज्ञान
प्तकर एकरूप रहता है । उस आत्मज्ञानका कारण स्वपर
क अर्थात भेदज्ञान है । सो करोड़ों उपायद्वारा उस विवे-
ो अपने चित्तमें लाओ, जो पहले मोक्ष गये अथवा जाते
। और आगे जायेंगे सो सब महिमा ज्ञानकीही है । जग-
ी लोग वनके समान है । पंचेन्द्रियके विषयोंकी चाह एक
लती हुई आग है । उस आगको ठंडा करनेके लिए ज्ञान-
ी मेघोंकी वर्षाके दूसरा उपाय नहीं है । पुण्य तथा
पके फलमें हर्ष तथा विषाद मत करो क्योंकि ये सब

पुद्गलकी अवस्थामें है जो पैदा होकर नाश हो जाती है अतः जगतके सब दद फंद तोडकर आत्माको ध्यान करो लाख बातकी बात यही है।

सम्यक्चारित्रके दो भेद है। एक सकलदेश दूसरा फलदेश। त्रस जीवोंकी हिंसाका त्यागकर वे मतलब स्थावर जीवोकाभी घात नही करना सो पहला अहिंसाणुव्रत है। दूसरोके प्राणनाशक कठोर, निंदायोग्य, खोटे वचनका नही कहना सो दूसरा सत्याणुव्रत हैं। जल और मिट्टीके सिवा कोई चीज दूसरेकी विना दी हुई नही लेना सो अचौर्याणुव्रत है। अपनी विवाहित स्त्रीके सिवा अन्य स्त्रियोंसे विरक्त रहना सो चौथा स्वदार संतोषव्रत है। अपनी शक्तिको विचारकर जन्मभरके लिए परिग्रहका प्रमाण करना पांचवा परिग्रहप्रमाण व्रत है। जन्मभरके लिए दस दिशावोंकी मर्यादाकर उसके वाहर नही जाना दिग्व्रत है। जन्मभरकी की हुई मर्यादामेभी कालकी मर्यादा कर लेना देशव्रत है। अनर्थ दण्ड व्रतके ५ भेद है। अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादचर्या, हिंसादान और दुःश्रुति। मनमे समताभाव धारणकर सामायिक करना सामायिक शिक्षाव्रत है। अष्ट चतुर्दशी पर्वके दिनोमें उपवास करना प्रोपधोपवास व्रत है। प्रतिदिन भोग और उपभोगकी वस्तुओंका नियम कर लेना भोगोपभोगव्रत है। मुनि या श्रावकको आहार देकर भोजन करना अतिथि संविभागव्रत है। इस प्रकार ५ अणुव्रत ३ गुणव्रत ४ शिक्षाव्रत ऐसे श्रावकके १२ व्रत है। उनके पांच २ अतिचार है। इन व्रतोंको जन्मपर्यंत

अन्तर्भावना लहरी

उगे कब ऐसो दिन भगवान । टेक ।
स्वातम तुष्ट निज पुष्ट रमूं निज, होय भेद विज्ञान ।
जगहितके हित व्रत तप संयम, धारूं त्याग महान ॥१॥
हो उदास गृहके कुवासमें, सेऊं सतगुरु थान ।
निज परिणति भज पर परिणति तज, तजूं आत्म अज्ञान ॥२॥
जगकी वस्तु अथिर सब जानूं, निजगुण परम निधान ।
मान सम अरि मित्र कनक तृण, सुवर महल समशान ॥३॥
हो सुमेरवत् निश्चल तनसे, निर्मल हृदय अमान ।
धरकर रूप दिगम्बर वनमें, सदा लगाऊं ध्यान ॥४॥
जबतक ऐसी दशा न होवे, मिले न पद निर्वाण ।
तबतक मन तव चरनिमुग्ध हो, रहे आपका ध्यान ॥५॥
हम जीवें जीने दें सबको, यह ही नारा महान् ।
आत्मदिशा तप त्याग निष्ठता, होय देश उत्थान ॥६॥
बिगड़ी दशा हमारी सुधरे, विघटे अघ अज्ञान ।
समझें उच्चादर्श आपका, रहे उसीकी शान ॥७॥

—०००—

मन मेरे राग भाव निवार ॥ टेक ॥
राग चिक्कनतें लगत है कर्म धूलि अपार ॥१॥
राग आस्रव मूल है, वैराग्य संवर धार ।
जिन न जान्यो भेद यह, वह गयो नरभव हार ॥२॥

मुनिराजसे अपने आयुका अल्पकाल [illegible] हुआ [illegible] कांप उठा। पश्चात्ताप उसके नेत्रोंसे छूटने लगी। उसकी अबतक सभी वासनाओंपर [illegible] हुआ। आयुका क्षय तक होनेवाला है यह अनुभव नहीं जान सकता। गृहवासमें [illegible] हुआ मैं सारा जीवनको व्यर्थ खोता रहा था। मुझ सरीखा और कौन मूर्ख होगा जो अपने जीवनका इतना समय मैंने व्यर्थ बरबाद कर दिया। पुण्य पुरुषोंके जीवन-चरित्रको पढ़करभी मैंने सम्यक्चारित्रको धारण नहीं किया मायामेंही फंसा रहा।

वैराग्यको प्राप्त होकर मुनिराजके चरणमें उसने दिगम्बर दीक्षा धारण की। पांचवे दिन उसके मस्तकमें शूल उत्पन्न हुवा, सातवे दिन मुनिराजके कहे अनुसार उसने अन्न जलका पूर्ण परित्याग कर समाधि धारण की। अंतमें अपनी नश्वर देहका विसर्जन कर वह मुक्तिको प्राप्त हुवा।

***

परमपूज्य विश्ववंद्य चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य

शांतिसागर महाराजकी

आदर्श आत्मसाधना व अपूर्व स्वर्गारोहण

नरनारी सारे कांप उठे, सुन कुंथलगिरिके समाचार ।
आचार्य शांतिसागर मुनिने, आजन्म त्याग कर दिया आहार ।।
चिंता छाई मुख म्लान हुवे, कर याद उन्होकी वारवार ।
भवसागरमें गोते खाते, अब कौन करेगा हमें पार ।।१।।

मुनि ऐल्लक क्षुल्लक त्यागीगण, चितासे थे अवसाद लिये ।
सुनते ही अपनी शक्ति मुजब, कर त्याग सभीने नियम लिये ।।
अपने गुरुके दर्शन करने, आतुरित हुवे उल्लास लिये ।
होगये विवश लख चतुर्मास, रह गये ठिठुर अफसोस किये ।।२।।

आंखोकी पलकें अधर रही, स्मृति जाग उठी थी अधरोंपे ।
चल पडे सभी दर्शन करने, भारत के कोने कोनेसे ।।
देखा न समय संग ओ साथी, अवलंब न कोई साथ लिया ।
गिरते पडते आफत सहने, उन महापुरुष का दर्श किया ।।३।।

वे तेजस्वी वे पुण्यपुरुष, आदर्श तपस्वी शक्तिमान ।
वे वीतराग कृतकृत्य हितू, वे बने अंतरात्मा महान ।।
अपने कठोर तपके प्रभाव, कर लिया आत्मदर्शन पुनीत ।
जड द्रव्य छोडकर आत्मद्रव्य, पर किया आपने दृढ प्रतीत ।।४।।

हो रहे नयन अब ज्योतिहीन, हो गया सभी जर्जर शरीर ।
[illegible] आहार ग्रहण, हो सके नही यह उठी पीर ।।

जल जंतु पूर्ण सागर, हैं क्षुब्ध जो हवासे ।
है कौन वीर जगमें, उसको तिरें भुजासे ॥
महिमा अपार तेरी, मुझसे कही न जावे ।
सुरगुरु समान तेरे, गुणका न पारपावे ॥ ४ ॥

हूं शक्तिहीन फिर भी, वश भक्तिके हुंवा हूं ।
निर्मल स्तुती तुम्हारी, प्रभु आज गा रहा हूं ॥
बलवान के हरीसे, निज पुत्रको बचानें ।
करते न सामना क्या, मृग मोरमें भुलानें ॥ ५ ॥

मैं मूर्ख हूं विबुधजन, हंसने मुझे हमेशा ।
पर भक्ति नाथ तेरी, करती मुझे अंदेशा ॥
कोयल प्रभो मधुरस्वर, तब विश्वको सुनाती ।
जब आम के द्रुमोंको, कलिका नवीन आती ॥ ६ ॥

तेरा स्तवन जगतके, सब पापको मिटाता ।
भवसे निकाल हमको, प्रभु मोक्षमें बिठाता ॥
छाया तिमिर जगतमें, घनके समान काला ।
क्षणमें उसे मिटाती, रविकी प्रचंड ज्वाला ॥ ७ ॥

तेरा स्तवन मनोहर, मुझसे न हो सकेगा ।
पर नाथ पुण्य तेरा, मन विश्वके हरेगा ॥
पंकज समूह पर जब, जल बून्द आ गिराती ।
मोती समान दिखकर, नरचित्तको लुभाती ॥ ८ ॥

स्तुतिको कहूं मैं, तेरी कथा अकेली ।
भव दुःखको हटानी, सुख शांति की सहेली ॥
अवलोकिके गगनमें, रविकी प्रचंड किरणें ।
लगती यहां कमलकी, कलियां नवीन खिलने ॥ ९

अपने समान मुझको, यदि नाथ तुम बनालो ।
आश्चर्य नाथ क्या है, गिरते हुवे सम्हालो ॥
जो नाथ भृत्य गणको, अपने समान करते ।
वे वंध्य हो जगतमें, आदर्श वान बनते ॥ १० ॥

जो एक वार तुमको, भर पेट देख पाया ।
उसको पदार्थ जगका, नहिं और नाथ भाया ॥
जिसको मिला सलिलसा, पय पान मिष्ट करने ।
वह नाथ क्यों चहेंगा, खारा जुनीर भरने ॥ ११ ॥

रागादि हीन रज जो, तेरे शरीरमें है ।
वे नाथ ना जगतमे, कहूं और अन्यके हैं ॥
अवशेष जो जगतमें, परमाणु और होते ।
तेरे समान सुंदर, नर नाथ और होते ॥ १२ ॥

सारा जगत तुम्हारे, गुणको जपै निरंतर ।
शशि की कला सदृश जो, फैला दशो दिगंतर ॥
यह दीन हूं निशाकर, जिसमें कलंक भारी ।
द्युति हीन हो दिवसमें —— बना भिखारी ॥ १३ ॥

जिसको प्रभो तुम्हारा, दिन रात आसरा है।
संसारमें किसीको, वह नाथ ना डरा है॥
गुणका समूह तेरा, सब विश्वको सुहाता।
रवि कांति को हटाकर, जगमें प्रकाश करता॥ १४॥

आश्चर्य नाथ इसमें, तिल मात्र भी नहीं हैं।
देवांगना तुम्हारे, मनको न हर सकी हैं॥
कल्पांत के पवनसे, चंचल पहाड़ होते।
पर मंदराद्रि अपनी, दृढता कभी न खोते॥ १५॥

प्रभु दीप तू मनोहर, धुंवा न तेल बाती।
पर विश्वके तिमिरको, तेरी प्रभा हटाती॥
कल्पांत की हवातक, उसको बुझा न पाती।
तेरी प्रभामयी लों, सब विश्वमें समाती॥ १६॥

ग्रसता न राहु तुमको, होते न अस्त प्यारे।
घनके समूह से भी, तेरी प्रभा न हारे॥
प्रभु तीन लोक तुमसे, होते प्रकाशमान।
हो नाथ सूर्य से भी, बढ़कर दया निधान॥ १७॥

ज्योति अमर तुम्हारी, तम मोहको निवारे।
प्यारे दिये निरंतर, नहि मेघ राहु तारे॥
शशिसे अपूर्व स्वामी, पंकज वदन तुम्हारा।
करना प्रकाश जगमें, रहना अमिट अपारा॥ १८॥

अव्यय अचिंत्य विभु हो, हो आदि ब्रम्ह ईश्वर ।
नाना अनंग केतु, कहते तुम्हे मुनीश्वर ॥
ज्ञान स्वरूप योगी, निर्मल अनेक एकी ।
व्यापी अनंत जगमें, कहते तुम्हे विवेकी ॥ २४ ॥

हो बुध्द जो विबुधजन, पूजा करे तुम्हारी ।
शंकर प्रभू तुम्ही हो, जगमें परोपकारी ॥
शिव मार्ग के विधाता, ब्रम्हा प्रभू तुम्ही हो ।
हो व्यक्त दीन त्राता, प्रभु विष्णुभी तुम्ही हो ॥ २५ ॥

तिहुं लोक दुःखकारी, तुमको प्रणाम मेरा ।
प्रति पाल दीन वत्सल, तुमको प्रणाम मेरा ॥
हे नाथ तीन जग के, तुमको प्रणाम मेरा ।
भव सिंधु के खिवैया, तुमको प्रणाम मेरा ॥ २६ ॥

गुण रत्न तीन जगके, तुझमें प्रभू समाये ।
आश्चर्य क्या जगतमें, आश्रय कहीं न पाये ॥
[illegible], गुणगर्व नाथ तेरा ।
[illegible], ऐसा कहीं [illegible] ॥ २७ ॥

णि रत्नसे जडित है, प्रभुका मधुर सिंहासन ।
शोभे महान उसपर, कंचन समान आनन ॥
मानो उत्तंग गिरि पे, किरणे सहस्त्रधारी ।
रविही खडा शिखरपे, जगमें प्रकाशकारी ॥ २९ ॥

ढुरते चमर सुहाने, सित कुंद पुष्प कैसे ।
सुंदर शरीर प्रभुका, शोभे सुवर्ण जैसे ॥
मानो सुमेरु तटपे, दोनो तरफ वहावे ।
झरना झरे सलिलको, मन विश्वके लुभावे ॥ ३० ॥

शशि कांतिसे मनोहर, रवि ताप नाशकारी ।
मणि रत्नसे जडित है, शोभा महान न्यारी ॥
प्रभु शीसपे सुहावे, ये तीन छत्र उंचे ।
मानो वता रहे हे, प्रभु नाथ तीन जगके ॥ ३१ ॥

चारो दिशा गगनमें, दुंदभि सुना रही है ।
सत्संग की त्रिजगको, महिमा वना रही है ॥
धर्मेश आदि प्रभुका, यश गान गा रही है ।
प्रभुकी विजय पताका, नभमें उठा रही है ॥ ३२ ॥

शुभ पारिजात सुंदर, मंदारकादि लेकर ।
सुरपुष्प वृष्टि कीनी, गंदोध विंदु देकर ॥
ठंडी व्यारमें जव, कुसुमावली गिरी है ।
समझे सभी प्रभूकी वचनावली खिरी हैं ॥ ३३ ॥

हैं क्रूर अति भयानक, मृगराज दाढ़ जिसकी ।
खूंखार कर रही है, जिन्हा रसाल उसकी ॥
आवे चिघाड करता, फिरभी नहिं डराहे ।
वह भक्त नाथ जिसको, तव पाद आसरा है ॥ ३९

अग्नी धधक रही हो, उठते हुवे लुहारे ।
मानो प्रलय उठा है, करने निगल्ल सारे ॥
तव नाम मंत्र लेते, अग्नी वने सुजल है ।
होती तरंग उसमें, मानो खिला कमल है ॥ ४० ॥

कोकिल समान काला, फुंकार सांप करता ।
आता हुवा निरखकर, मानव महान डरता ॥
तव नाम नाग दमनी, जो भक्त नाथ धरते ।
पदके तले कुचलकर, निःशंक हो विचरते ॥ ४१ ।

रणमें मचा हुवा हो, धमसान युद्ध भारी ।
घोडे विशाल हाथी, हो सैन्य शस्त्रधारी ॥
उसमें विजय सहजही, तव नाम मंत्र लेते ।
तमको हटा तुरंत ज्यों, सूरज प्रकाश देते ॥ ४२

जब वाण तीक्ष्ण चलते, मरते तुरग हाथी ।
करते मनुष्य लाखों, मिलना न कोई साथी ॥
लखि खून धार बहती, ऐसे महा समरमें ।
तव भक्त ही विजयपा, होता वहां अमर है

० श्री आदिनाथ स्तवन ०

१–श्री आदिनाथ स्वामी, तुमको त्रिवार ध्यांऊ ।
हो लीन भक्ति वशमें, मनमें तुम्हें बिठाऊं ।।
प्रभु आप वीतरागी, ज्ञानी हितैषी प्यारे ।
काटे अथाह भवसे, जो डूबते बिचारे ।।

२–जीती कषाय तुमने, जीता त्रिलोक सारा ।
तेरी अमोघ शक्ति, लखि काम मोह हारा ।।
कई नाम ले तुम्हें सब, भगवन् पुकारते है ।
मंदिर बना हृदयमें, तुमको विठारते है ।।

३–जब नष्ट हो गये थे, वे कल्पवृक्ष सारे ।
जनता तडफ रही थी, बिन अन्नवस्त्र प्यारे ।।
तब वर्ण चार तुमने, निर्माण कर बताया ।
व्यवहार मार्ग सिखला, प्रभु "आदि" नाम पाया ।।

४–मुनि मानतुंगजीको, जब जेलमें गिराया ।
चालीस आठ ताले, अंदर उन्हें बिठाया ।।
उस वक्त नाथ तुमको, मुनि ध्यानमें लगाये ।
ताले खुले फटाफट, बाहर मुनीश आये ।।

[illegible]

दुर्जना भूतवेतालाः पिशाचा मुद्गलास्तथा ।
ते सर्वे उपशाम्यन्तु देवदेवप्रभावतः ॥ ७५ ॥
दिव्यो गोप्यः सुदुष्प्राप्यः श्रीऋषिमण्डलस्तवः ।
भाषितस्तीर्थनाथेन जगत्त्राणकृतोऽनघः ॥ ७६ ॥

ऋषिमन्डल स्तोत्रका यन्त्रमन्त्र और पारमार्थिक फल

रणे राजकुले वन्हौ जले दुर्गे गजे हरी ।
स्मशाने विपिने घोरे स्मृतो रक्षति मानवं ॥ १ ॥

युद्ध भूमिमें, राजदरबारमें, अग्निप्रकोपमें, जलप्रवाहमें, कठिनदुर्ग (परकोटा) में, हाथीके उपसर्गमें, सिंहके उपसर्गमें, स्मशानभूमिमें, भयंकर जंगलमें, इस ऋषिमंडल स्तोत्रको स्मरण करनेसे सर्व बाधाओंको दूर कर मानवकी रक्षा

राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं पदभ्रष्टा निजं पदं ।
लक्ष्मीभ्रष्टा निजां लक्ष्मीं प्राप्नुवंति न संशयः । २ ।

इस स्तोत्रको श्रद्धा व नियमसे युक्त होकर जो पाठ करते हैं, वे यदि राज्यसे च्युत हो तो पुनः राज्यको, अधिकार-पदसे च्युत हो तो पुनः अधिकारपदको, संपत्तिसे च्युत होनेपर संपत्तिको, निःसंदेह प्राप्त करते है ।

भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतं ।
धनार्थी लभते वित्तं नरः स्मरणमात्रतः । ३ ।

इस स्तोत्रको श्रद्धापूर्वक त्रिकरण शुद्धिसे स्मरण य पठन करनेवाले यदि पत्नीकी इच्छा करते हो तो पत्नीको पुत्रकी इच्छा करते हो तो पुत्रको, और संपत्तिकी इच्छा करते हो तो संपत्तिको प्राप्त करते हैं ।

स्वर्णे रूप्येऽथवा कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत् ।
तस्य वेष्टमहासिद्धि गृहे वसति शास्वती । ४ ।

जो इस ऋषिमंडल मंत्रको सुवर्ण, चांदी अथवा कांसेके पत्रेपर लिखकर पूजन करता है, उसके घरमें सर्वदा इच्छित अष्ट महाऐश्वर्यकी सिद्धि होती है ।

भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गलके मूर्ध्नि वा भुजे ।
धारितः सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशनं । ५ ।

इस दिव्य मंत्रको भूर्जपत्रपर लिखकर कंठमें, मस्तकपर अथवा भुजमें जो सदा धारण करता है, वह समस्त भयोंसे रहित होता है ।

[illegible] । ७६ ।

ऋषिमन्डल स्तोत्रका यन्त्रमन्त्र और पारमार्थिक फल

रणे राजकुले वन्हौ जले दुर्गे गजे हरौ ।
स्मशाने विपिने घोरे स्मृतो रक्षति मानवं ॥ १ ॥

युद्ध भूमिमें, राजदरवारमें, अग्निप्रकोपमें, जलप्रवाहमें, कठिनदुर्ग (परकोटा) में, हाथीके उपसर्गमें, सिंहके उपसर्गमें, स्मशानभूमिमें, भयंकर जंगलमें, इस ऋषिमंडल स्तोत्रको स्मरण करनेसे सर्व बाधाओंको दूर कर मानवकी रक्षा करता है ।

राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं पदभ्रष्टा निजं पदं ।
लक्ष्मीभ्रष्टा निजां लक्ष्मीं प्राप्नुवंति न संशयः । २ ।

इस स्तोत्रको श्रद्धा व नियमसे युक्त होकर जो पाठ करते हैं, वे यदि राज्यसे च्युत हो तो पुनः राज्यको, अधिकार-पदसे च्युत हो तो पुनः अधिकारपदको, संपत्तिसे च्युत होनेपर संपत्तिको, निःसंदेह प्राप्त करते है ।

भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतं ।
धनार्थी लभते वित्त नरः स्मरणमात्रतः । ३ ।

इस स्तोत्रको श्रद्धापूर्वक त्रिकरण शुद्धिसे स्मरण या पठन करनेवाले यदि पत्नीकी इच्छा करते हो तो पत्नीको, पुत्रकी इच्छा करते हो तो पुत्रको, और संपत्तिकी इच्छा करते हो तो संपत्तिको प्राप्त करते है ।

स्वर्णे रूप्येऽथवा कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत् ।
तस्य वेष्टमहासिद्धि गृंहे वसति शास्वती । ४ ।

जो इस ऋषिमंडल मंत्रको सुवर्ण, चांदी अथवा कांसेके पत्रपर लिखकर पूजन करता है, उसके घरमें सर्वदा इच्छित अष्ट महाऐश्वर्यकी सिद्धि होती है ।

भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गलके मूर्ध्नि वा भुजे ।
धारितः सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशनं । ५ ।

इस दिव्य मंत्रको भूर्जपत्रपर लिखकर कंठमें, मस्तकमे अथवा भुजमें जो सदा धारण करता है, वह समस्त भयोंसे रहित होता है ।

तीर्णजन्मार्णवेभ्यस्सद्‌दृग्द्धिचारित्रवाम्भ वैः ।
भव्येशीभ्यो भदंतेभ्यो नमोभीष्टपदाप्तये । ७१ ।
श्रीर्न्हीर्कीतिधृतिर्लक्ष्मी गौरीचंडी सरस्वती ।
जया च विजया क्लिन्नाऽजिता नित्या मदद्रवा । ७२ ।
कामांगा कामबाणा च मानंदा नंदमालिनी ।
माया मायाविनी रौद्री कला काली कलिप्रिया । ७३ ।
एताः सर्वा महादेव्यो वर्तंते या जगत्त्रये ।
मम सर्वाः प्रयच्छंतु कीर्ति लक्ष्मीं धृति मति । ७४ ।
दुर्जना भूतवेतालाः पिशाचा मुद्‌गलास्तथा ।
ते सर्वे उपशाम्यंतु देवदेवप्रभावतः । ७५ ।
दिव्यो गोप्यः सुदुष्प्राप्यः ऋषीणां मंडलस्तवः ।
भाषितस्तीर्थनाथेन जगत्‌त्राणकृतोऽनघः । ७६ ।

ऋषिमन्डल स्तोत्रका यन्त्रमन्त्र और पारमार्थिक फल

रणे राजकुले वन्हौ जले दुर्गे गजे हरौ ।
स्मशाने विपिने घोरे स्मृतो रक्षति मानवं ॥ १ ॥

युद्ध भूमिमें, राजदरबारमें, अग्निप्रकोपमें, जलप्रवाहमें, कठिनदुर्ग (परकोटा) में, हाथीके उपसर्गमें, सिंहके उपसर्गमें, स्मशानभूमिमें, भयंकर जंगलमें, इस ऋषिमंडल स्तोत्रको स्मरण करनेसे सर्व बाधाओंको दूर कर मानवकी रक्षा करता है ।

राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं पदभ्रष्टा निजं पदं ।
लक्ष्मीभ्रष्टा निजां लक्ष्मीं प्राप्नुवंति न संशयः । २

इस स्तोत्रको श्रद्धा व नियमसे युक्त होकर जो प
करते हैं, वे यदि राज्यसे च्युत हो तो पुनः राज्यको, अधिका
पदसे च्युत हो तो पुनः अधिकारपदको, संपत्तिसे च्
होनेपर संपत्तिको, निःसंदेह प्राप्त करते है ।

भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतं ।
धनार्थी लभते वित्त नरः स्मरणमात्रतः । ३ ।

इस स्तोत्रको श्रद्धापूर्वक त्रिकरण शुद्धिसे स्मरण
पठन करनेवाले यदि पत्नीकी इच्छा करते हो तो पत्नी
पुत्रकी इच्छा करते हो तो पुत्रको, और संपत्तिकी इच्छा क
हो तो संपत्तिको प्राप्त करते हैं ।

स्वर्णे रूप्येऽथवा कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत् ।
तस्य वेष्टमहासिद्धि गृहे वसति शास्वती । ४ ।

जो इस ऋषिमंडल मंत्रको सुवर्ण, चांदी अथवा कां
पत्रेपर लिखकर पूजन करता है, उसके घरमें सर्वदा इच्छि
अष्ट महाऐश्वर्यकी सिद्धि होती है ।

भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गलके मूर्ध्नि वा भुजे ।
धारितः सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशनं । ५ ।

इस दिव्य मंत्रको भूर्जपत्रपर लिखकर कंठमें, मस्त
अथवा भुजमें जो सदा धारण करता है, वह समस्त भ
रहित होता है ।

२५१) श्रीमान महावीरप्रसादजी प्रभुदयालजी छावडा झुमरीतलैया (विहार)
२०१) श्रीमान सेठ रिखवदासजी मन्नालालजी वंबई
२०१) श्री वीरेंद्रकुमारजी जैन अंधेरी वंबई
१५१) श्री चंपतरायजी नेमिचंदजी अजमेरा उस्मानाबाद
१५१) श्रीमान सेठ भाईचंद रूपचंद दोशी वम्बई
१५१) श्री नेमीचन्दजी जैन मालाड वम्वई
१५१) श्रीमती धर्मपत्नी शिवप्रसादजी जैन वम्बई
१०१) श्री पन्नालाल रायचंद वम्बई
१०१) श्री कपूरचंदजी जैन वोरिवली वम्बई
१०१) श्री सोभागमलजी रूपचंदजी गांधी वोरिवली वं
१०१) श्री जयंतिलाल लल्लूभाई वम्बई
१०१) श्रीमती चंचलावाई रावसाहेव शहा अंधेरी बम्ब
१०१) श्रीमती सरस्वतीबाई रघुवीरशरणजी जैन वोरि
१०१) श्री वावुलाल जेठालाल मेहता वम्बई
१०१) श्रीमान इन्दरचन्दजी झांजरी नागपुर
१०१) श्रीमान वसंतिलालजी पतंगिया वोरिवली वम्बई
१०१) श्री पं. मदनलालजी जैन मालाड वम्बई
१०१) श्री एल्. सुंदरलालजी जैन वम्बई
१०१) श्री हिराचन्द तलकचन्द शहा वरली हस्ते श्री नेमीचन्द हिराचन्द शहा
१०१) श्री जवेरचन्दजी मोतीलालजी वम्बई
१०१) श्री लखपतरायजी जैन वम्बई
१०१) श्री सनतकुमारजी जैन वम्बई

२५१) श्रीमान महावीरप्रसादजी प्रभुदयालजी छावड़ा
झुमरीतलैया (बिहार)
२०१) श्रीमान सेठ रिखवदासजी मन्नालालजी बंबई
२०१) श्री वीरेंद्रकुमारजी जैन अंधेरी बंबई
१५१) श्री चंपतरायजी नेमिचंदजी अजमेरा उस्मानाबाद
१५१) श्रीमान सेठ भाईचंद रूपचंद दोशी बम्बई
१५१) श्री नेमीचन्दजी जैन मालाड बम्बई
१५१) श्रीमती धर्मपत्नी शिवप्रसादजी जैन बम्बई
१०१) श्री पन्नालाल रायचंद बम्बई
१०१) श्री कपूरचंदजी जैन बोरिवली बम्बई
१०१) श्री सोभागमलजी रूपचंदजी गांधी बोरिवली बम्बई
१०१) श्री जयंतिलाल लल्लूभाई बम्बई
१०१) श्रीमती चंचलाबाई रावसाहेब शहा अंधेरी बम्बई
१०१) श्रीमती सरस्वतीबाई रघुवीरशरणजी जैन बोरिवली
१०१) श्री बाबुलाल जेठालाल मेहता बम्बई
१०१) श्रीमान इन्दरचन्दजी झांजरी नागपुर
१०१) श्रीमान वसंतिलालजी पतंगिया बोरिवली बम्बई
१०१) श्री पं. मदनलालजी जैन मालाड बम्बई
१०१) श्री एल्. सुंदरलालजी जैन बम्बई
१०१) श्री हिराचन्द तलकचन्द शहा वरली हस्ते
श्री नेमीचन्द हिराचन्द शहा
१०१) श्री जवेरचन्दजी मोतीलालजी बम्बई
१०१) श्री लखपतरायजी जैन बम्बई
१०१) श्री सनतकुमारजी जैन बम्बई

१०१) श्री एम्. सी. जैन चिकलठाना, औरंगाबाद

१०१) श्री नन्दलालजी पांड्या बोरिवली बम्बई

१०१) श्रीमती सुरजबाई काला स्व. जयकुमारकी स्मृतिमें
हस्ते राजेन्द्रकुमार सन्तोपकुमार

५१) श्रीमती कस्तूरीदेवी धर्मपत्नी कपूरचन्दजी जैन
बोरिवली बम्बई

११६४१।–

श्रीमान चन्दुलाल हिराचन्द शहाने १५ रीम कागद फ्री दिया।

उपरोक्त सभी दातारोने जो अपनी उदारता प्रगट की है उसके लिये हम उनके आभारी होते हुवे अनेक धन्यवाद देते है।

–श्री अखिल भारतवर्षीय दिगंबर
जैन युवा परिषद, बम्बई

अठरा दोष रहित, गणधरादिकर सेवित नव लब्धिको धारण किये हो। आपका उपदेश उपयोगमे लाकर अप्रमाण जीव मोक्षको जा चुके हैं, जाते है, और सदैव जाते रहेंगे। दुःखरूप खारे समुद्रसे आपके सिवाय और कोई तारनेवाला नही है। इससे मै आपकी शरणमें आकर दुःखको जो मैने वहुत काल तक पाये हैं उनको कहता हूं। मै स्वयं अपना निजस्वभाव भूलकर चारो गतियोंमे भटका। कर्मोजनित शुभ, अशुभ परिणामोंको मैने अपना स्वरूप समझा। अपनेको अन्य पदार्थोका कर्ता जाना और पर पदार्थोमे प्रिय अप्रिय कल्पना की। मै मूर्खता धारणकर दुखी हुवा। जैसे कि हिरण मृग तृष्णाको पानी जानकर दुःखित होता हैं। शरीरकी हालतको आत्माकी हालत जानी और कभीभी अपना असली रूप नही जाना। आपको जाने विना मैने जो दुःख पाये सो हे भगवान आप जानते है। तिर्यच, मनुष्य, देव, नरक गतिमे जन्म धारणकर अनंत वार मरा हूं। अव हे दयावान! काल लब्धिके कारण आपका दर्शन पाकर अव मै जिनधर्मका श्रध्दानी हो प्रसन्न हुवा हूं संसारसे पार लगानाही आपका सुयश तथा नाम है।

जीवकी वुराई करनेवाले विषय तथा कषाय है इनमें मेरा परिणाम न जावे। मै स्वयं अपनेमे मग्न होकर रहू. ताकि पराधिनता रहित (मुक्त) होऊं। मुझे और कुछ चाह नही हैं। रत्नत्रयरूपी निधी मुझे दीजिये। आप मेरे कार्यके कारण हो। मेरी मुक्ति कीजिये और मोहज्वाला दूर कीजिये।

वैसा मान लिया अत: प्रमादरहित हो अपने स्वरूपको स्वीकार करता हूं। और सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञानसे अखंड सुखमें रहता हुवा साक्षात सिध्द स्वरूप ज्ञान दर्शनोपयोगी जो मेरा आत्मा हैं उसको एवं अन्य जों जीव परमात्मभावको प्राप्त हो गये है उनको भी मैं भक्तिभावसें प्रणाम करता हूं।

स्व. परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी महाराजने अपने अंतिम संदेशमे सम्यक्त्व तथा संयमको पालन करते हुवे भव्य जीवोंको आत्मानुभूतिके लिये चोवीस घंटेमें उत्कृष्ट छह् घडी मध्यम चार घडी जघन्य दो घडी जितना समय मिले उतना समय आत्मचिंतन करें। कमसे कम १०–१५ मिनट तो करे। कमसे कम हमारा कहना है कि पांच मिनिट तो करें। सत्यवाणी कौनसी हैं ? एक आत्मचिंतन। आत्मचिंतनसे सर्व कार्य सिध्द होनेवाला है। उसके सिवाय कुछभी नही। रे भाई ! बाकी कोईभी क्रिया करनेपर पुण्यबंध पडता है स्वर्ग सुख मिलता हैं। सपत्ति, संतति, धनवान स्वर्गसुख यह सब होते हैं पर मोक्ष नही मिलता हैं। मोक्ष मिलनेके लिये केवल आत्मचिंतन है तो वह कार्य करनाही चाहिये। उसके बिना सद्‌गति नही होती ऐसा स्पष्ट उपदेश दिया हैं।